महावीर-निर्वाण का ढाई हजारवाँ मंगल-वर्ष

आत्मधर्म

[352]

प्रशममूर्ति भगवती पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिन

जन्मजयंती हीरक उत्सव स्वर्णपुरी में हुआ महान;
चिरंजीव हो धर्मरतन यह—आशिष देते श्री गुरुकहान।

तंत्री-**पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार** * संपादक : **ब्रह्मचारी हरिलाल जैन**
वीर सं० 2500 श्रावण-भाद्र० (चन्दा : चार रुपये) वर्ष 30 : अंक 4-5

आवी श्रावणनी बीजलडी

आवी श्रावणनी बीजलडी आनन्ददायिनी हो बेन,
—सुमंगलमालिनी हो बेन!
जन्म्यां कुंवरी माता-'तेज'-घरे महा पावनी हो बेन,
— परम कल्याणिनी हो बेन!
ऊतरी शीतळतानी देवी शशी मुख धारती हो बेन,
—नयनयुग ठारती हो बेन!
निर्मळ आंखलडी सूक्ष्म-सुमति-प्रतिभासिनी हो बेन,
—अचल-तेजस्विनी हो बेन!

(साखी)

मातानी बहु लाडिली, पितानी काळज-के;
बन्धुनी प्रिय ब्हेनडी, जाणे चन्द्र-चकोर।

ब्हेनी बोले ओछुं, बोलाब्ये मुख मलकती होबेन
—कदीक फूल वेरती हो बेन!
सरला, चित्त उदारा, गुणमाळा उर धारिणी हो बेन,
—सदा सुविचारिणी हो बेन!.... आवी०

(साखी)

वैरागी अन्तर्मुखी, मंथन पारावार;
ज्ञातानुं तल स्पर्शीने, कयों सफळ अवतार।

ज्ञायक-अनुलग्ना, श्रुतदिव्या, शुद्धिविकासिनी हो बेन,
—परमपदसाधिनी हो बेन!
संगविमुख, एकल निज-नंदनवन-सुविहारिणी हो बेन,
—सुधा-आस्वादिनी हो बेन!... आवी०

(साखी)

स्मरणो भव-भवनां रूडां, स्वर्णमयी इतिहास,
—दैवी उर-आनन्दिनी 'चंपा' पुष्प-सुवास।

कल्पलता मळी पुण्योदयथी चिंतितदायिनी हो बेन,
—सकलदुखनाशिनी हो बेन!
मुक्ति वरं—मनरथ अे मात पूरो वरदायिनी हो बेन,
—महाबलशालिनी हो बेन! ....आवी०

सुवर्णपुरी में आनंदमंगलकारी

हीरक जन्मजयन्ती-महोत्सव

धर्मकाल अहो दैवी
तीर्थधाम सुवर्ण में;
ज्ञानवर्षा जहाँ होती
कहानगुरुमुखमेघ से।

अध्यात्मयुगप्रवर्तक मंगलमूर्ति परमकृपालु परमपूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के सत्प्रताप से सुवर्णपुरी में वीतराग जैनधर्म का सदा जयजयकार वर्तता है; उनके मंगल प्रभाव से अनेक मंगल उत्सव भी संपन्न होते रहते हैं। पूज्य गुरुदेव की परमभक्त, मुमुक्षु समाज की शिरोमणि, प्रशममूर्ति भगवती पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन की षष्टिपूर्ति हीरक जन्मजयंती का मंगल महोत्सव प्रथम भाद्रपद कृष्णा दोज के दिन सुवर्णपुरी में समस्त मुमुक्षु भक्तजनों द्वारा अति आनंदोल्लास के साथ मनाया गया।

भाद्रपद मास लगते ही सोनगढ़ में जन्मजयंती के इस मंगल-उत्सव की तैयारियों के लिये मुमुक्षुहृदय मचल उठते हैं; देश-विदेश में निवास करनेवाले साधर्मी; पूज्य बहिनश्री के प्रति अतिभक्ति-प्रेम के कारण, जन्मजयंती-उत्सव-आमंत्रण-पत्रिका की प्रतीक्षा करने लगते हैं।

इस वर्ष पूज्य बहिनश्री 60 वर्ष पूर्ण करके 61वें वर्ष में मंगल प्रवेश कर रही थीं; इसलिये उनके जन्मदिवस 'षष्टिपूर्ति हीरक जन्मजयंती-महोत्सव' के रूप में विशेष समारोहपूर्वक मनाने का निर्णय किया था।

इस हीरक-महोत्सव का शुभ संदेश सुंदर निमंत्रण-पत्रिका द्वारा भारतवासी सर्व मुमुक्षु मंडलों को तथा विदेशवासी सर्व मुमुक्षुओं को यथासमय भेजा गया था। निमंत्रण-पत्रिका लिखने की मंगलविधि परमागममंदिर में समग्र मुमुक्षु मंडल की उपस्थिति में माननीय श्री रामजीभाई माणेकचंद दोशी के शुभहस्त से करायी गई थी। पत्रिका समाज के समक्ष पढ़कर सुनायी गई; प्रसंगोचित मंगल गीतों एवं जयजयकार के मधुर नाद से 'हीरक जयंती' के उत्सव का मंगल संदेश मुमुक्षु हृदयों में गूंजने लगा; माननीय श्री रामजीभाई ने पूज्य गुरुदेव के पुनीत कर-कमल में निमंत्रण-पत्रिका अर्पण की; पत्रिका को देखकर-पढ़कर, पूज्य गुरुदेव ने बहिनश्री का जन्मदिवस-60वें वर्ष की पूर्ति का हीरक महोत्सव—मनाने के लिये अनुमोदनापूर्वक प्रसन्नता व्यक्त की थी।

एक सप्ताह पूर्व मुमुक्षु बहिनों ने, पूज्य गुरुदेव का प्रवचन समाप्त होने के पश्चात्, सभा में जन्मजयंती के मंगल आगमन का संदेश देनेवाला भावभीना मधुर गीत गाकर सुवर्णपुरी का वातावरण मंगल-महोत्सव की प्रतीक्षा से गुंजायमान कर दिया था; उस अवसर पर भी पूज्य गुरुदेव ने प्रसन्नतापूर्वक गद्‌गद्‌भाव से हृदयोद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा था कि—'बहिनों को चंपाबहिन के प्रति कितना प्रेम है !! चंपाबहिन का जन्मदिवस मनाने के लिये बहिनों में कितना हर्षोल्लास है !!'

प्रतीक्षित मंगल-महोत्सव के शुभ दिन आ गये। उत्सव की शोभा में अभिवृद्धि हेतु सर्वप्रथम पंच परमेष्ठी भगवंतों का 'मंडलविधान पूजा' द्वारा मंगल पदार्पण हुआ। इस त्रिदिवसीय पुनीतोत्सव के निमित्त स्थापनापूर्वक समागत उन पंचपरमेष्ठी भगवंतों की विधिपूर्वक मंडलविधान पूजा जोडियानिवासी भाई शांतिलाल तथा भाई कांतिलाल गिरधरलाल शाह की ओर से रचायी गई थी।

श्रावण शुक्ला पूर्णिमा—वात्सल्यधर्म का पर्व—इस मंगल उत्सव का प्रथम दिवस था। बड़े प्रभात से तीनों दिन आश्रम का नभमंडल शहनाई-नौबतवादन एवं 'भारत की एक सन्नारी की हम कथा सुनाते हैं'... आदि सुमधुर गीतों से गूँजता रहा। सचमुच भारतवर्ष की इस

युग की अध्यात्मज्ञानानुभूतिभूषित सर्वश्रेष्ठ सन्नारी की जन्मजयंती मनाने के लिये मुमुक्षुजन आनंदविभोर हो गये थे। उत्सव को सुशोभित करने हेतु श्रीजिनमंदिर, परमागममंदिर तथा ब्रह्मचर्याश्रम को विद्युत-प्रसाधनों से सजाया गया था। हीरकज्योति समान विद्युत स्वस्तिक तथा रंग-बिरंगे विद्युतशृंगार इस मंगल अवसर की शोभा में अभिवृद्धि करते थे।

प्रथम भाद्रपद कृष्णा दोज—मंगल महोत्सव का मुख्य दिवस—पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन की जन्मजयंती का मंगल दिन। बड़े प्रभात से आनंदभेरी एवं जन्मबधाई के सुमधुर गीतों से तथा जयजयकार के मंगल नादों से आश्रम का वातावरण आनंदविभोर हो गया था। पूज्य गुरुदेव के मंगल-प्रवचन से पूर्व ब्रह्मचारी बहिनों ने प्रासंगिक गीत गाकर अपनी परमाधार पूज्य बहिनश्री के प्रति श्रद्धा-भक्ति अभिव्यक्त करके आज के मंगल महोत्सव का मंगलाचरण किया था।

पूज्य बहिनश्री जब पूज्य गुरुदेव के प्रवचन में पधारीं, तब उस शुभ प्रसंग पर श्री छबलबहिन तम्बोली ने प्रशमरसभीनी गंभीर मुद्रायुक्त बहिनश्री के विशाल ललाट में केशर का तिलक करके, अपने परिवार सहित हीरक जयंती के प्रतीकरूप हीरा-पन्ना-सुवर्णपुष्पों आदि से उनका स्वागत किया और पूज्य गुरुदेव के मंगल-सान्निध्य में तथा विशाल मुमुक्षु समुदाय की उपस्थिति में पूज्य बहिनश्री का अति भावपूर्ण सम्मान किया। यह धन्य प्रसंग अद्‌भुत आश्चर्यकारी था। उस समय की पूज्य बहिनश्री की प्रशमरस झरती उदासीन निस्पृह मुद्रा देखकर पूज्य गुरुदेव ने भी भावपूर्वक कहा था कि—चंपाबहिन तो सचमुच महान धर्मरत्न हैं,... प्रशमरस का पिंड हैं,... उन्हें यह सब बाहरी कुछ भी अच्छा नहीं लगता, लेकिन भक्तों को तो भक्तिप्रेमवश उनका सम्मान करने के भाव आयेंगे ही!!

पश्चात् बम्बईनिवासी श्री चंपकलाल मोहनलाल डगली तथा उनकी धर्मपत्नी श्रीमती प्रभाबहिन ने पूज्य बहिनश्री का स्वागत करके, हीरक जयंती-उत्सव के मंगल उपलक्ष्य में पूज्य बहिनश्री के भूत-वर्तमान-भावी—ऐसे तीन भवों का संकेत देनेवाली सुंदर कलापूर्ण 'रौप्यकृति' पूज्य बहिनश्री के कर-कमल में समर्पित की थी; उस प्रसंग पर श्रीमती प्रभाबहिन ने समस्त महिमा समाज की ओर से श्रद्धांजलि भरा भाववाही वक्तव्य प्रस्तुत किया था। पूज्य बहिनश्री के सम्मान का मनोहर दृश्य देखकर मुमुक्षुओं के हृदय आनंद से नाच रहे थे; जयजयकार के उच्च मधुर नादों से गगनमंडल गूँज उठाा था; आबाल-वृद्धि सबके हृदय भक्तिऊर्मि से छलक रहे थे; सर्वत्र आनंद एवं प्रसन्नता की लहर दिखायी देती थी।

इस मंगल उत्सव के दिनों में पूज्य गुरुदेव प्रसन्नभाव से अनेक बार कहते थे कि—चंपाबहिन को बाहर का यह सब बोझ लगता है, परंतु लोगों को उनके प्रति भाव है, भक्तिप्रेम है, इसलिये लोग तो अपना भाव प्रगट करेंगे। बहिन को (चंपाबहिन को) तो सब देखते-जानते रहना... लोगों का भाग्य है, अरे, महिलाओं का तो महान भाग्य है कि इस काल बहिन (चंपाबहिन) जैसी धर्मरत्न पैदा हुई हैं... उन पर सबको एक-सा प्रेम है;... लोग उनके लिये जितना करें, उतना कम है;... उन्हें कहाँ कुछ है ? उन्हें तो जो हो वह देखना—देखते रहना;... हम तो इसमें (लोग उनका जन्मोत्सव मनायें, उनका सम्मान करें इसमें) खुश हैं;... लोगों को उत्साह है, बड़ा उत्साह है;... बहिन तो धर्मरत्न हैं।

उत्सव में बहुत लोग आये हैं, लोगों को चंपाबहिन के प्रति बड़ा भाव है—ऐसे पूज्य गुरुदेव के उद्‌गार निकलते थे, तब पूज्य बहिनश्री के अत्यंतात्यंत नम्रीभूत होकर कहा कि —'हम तो अपने आत्मा का करने आये हैं' (अर्थात् हमें यह सब उपाधि मालूम होती हैं)। पूज्य गुरुदेव उनकी सहज निस्पृहता देखकर प्रसन्नचित्त से धर्मवात्सल्यपूर्वक बोले कि —लोगों को भाव आते हैं... तुम देखती रहो.. तुम्हें क्या है ?... लोगों को भाव तो आयेंगे न! मेरी समझ में तो लोग जो कुछ कर रहे हैं वह (भी) कम है।

—इसप्रकार विभिन्न प्रसंगों पर पूज्य गुरुदेव के श्रीमुख से निकलते हुए ऊर्मिभरे मंगल वचन मुमुक्षु समाज के आनंदोल्लास में अभिवृद्धि करते थे।

प्रवचन के पश्चात् श्रद्धांजलि समर्पण-समारोह में श्री पंडित खीमचंदभाई सेठ, श्री चंपकलाल डगली तथा श्री गिरधरलालभाई नागरदास शाह ने श्रद्धा-भक्ति युक्त भावभीनी अंजलि समर्पित की थी। पश्चात् हीरक जयंती के हषोल्लास में '६१' के अंकवाली ऐसी ३२०००/- बत्तीस हजार से अधिक रुपये की रकमें ज्ञानप्रचार हेतु घोषित हुई थीं।

आज के मांगलिक दिन पूज्य बहिनश्री-बहिन के घर परम पूज्य गुरुदेव के आहारदान का आनंदकारी प्रसंग था। इस प्रसंग पर पूज्य गुरुदेव के मंगल वचनोद्‌गार तथा पूज्य बहिनश्री-बहिन की विशिष्ट गुरुभक्ति सबको अति प्रमुदित करते थे।

तत्पश्चात् आश्रम के स्वाध्यायभवन में समस्त मुमुक्षु मंडल पूज्य बहिनश्री के दर्शनार्थ आया था। इस प्रसंग पर मुमुक्षु भाईयों ने पूज्य बहिनश्री को कुछ आत्मार्थबोधक मंगल-वचन सुनाने की प्रार्थना की थी। पूज्य गुरुदेव की मंगल वाणी में सब आ जाता है—ऐसा कहकर

पूज्य बहिनश्री ने ज्ञायक की महत्ता, उसके अतिरिक्त अन्य सबकी तुच्छता तथा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की आराधना की महिमा आदि को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करते हुए कुछ आत्मस्पर्शी शब्द कहे थे। दर्शनों का यह शुभप्रसंग भी भक्तिगीतों तथा जयकार के गगनचुंबी मधुर नादों से वातावरण को भर देता था। अपनी अनन्य धर्ममाता के प्रति सर्वस्वार्पणभावप्रेरित हावभाव से व्यक्त होनेवाले ब्रह्मचारी बहिनों के श्रद्धा-भक्ति-उल्लास उत्सव की धर्मप्रभावकता में विशेष अभिवृद्धि करते थे।

इस शुभोत्सव के हर्षोपलक्ष में भाद्रपद कृष्णा दोज के दिन—पूज्य बहिनश्री के मंगल जन्मदिन को—जामनगर निवासी श्री छबलबहिन फूलचंद तम्बोली की ओर से 'साधर्मी-वात्सल्य' था। हीरक जयंती-महोत्सव के उपलक्ष में आज सूरतनिवासी श्री सविताबहिन ब्रजलाल डेलीवाला की ओर से प्रतिवर्ष पूज्य बहिनश्री के जन्मदिवस पर 'साधर्मीवात्सल्य' रखने की घोषणा हर्षोल्लाससहित की गई थी। इस मंगल-महोत्सव के हर्षोपलक्ष में श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट-संस्था की ओर से सारे गाँव में (प्रत्येक घर में) पाँच-पाँच पेड़े बाँटे गये थे।

रात्रि को महिला मुमुक्षु समाज में पूज्य बहिनश्री का अध्यात्मरस-झरता आत्मस्पर्शी प्रवचन हुआ था। तत्पश्चात् पूज्य श्री शांताबहिन के प्रवचन के बाद ब्रह्मचारी बहिनों द्वारा प्रस्तुत प्रसंगद्योतक मांगलिक भक्तिगीत इत्यादि पूर्वक आज का यह आनंदकारी हीरक जन्मजयंती-महोत्सव सानंद संपन्न हुआ था।

—इसप्रकार आत्मार्थी भक्तजनों को आह्लादकारी ऐसा यह मंगलमय हीरक जन्मजयंती-उत्सव सुवर्णपुरी में जयजयकारपूर्वक मनाया गया।

पूज्य स्वामीजी करुणापूर्वक कहते हैं कि—भाई, अनंतकाल में ऐसा दुर्लभ मनुष्यजन्म प्राप्त हुआ, उसमें अपने सत्स्वरूप को लक्ष में ले... वीतरागमार्ग में कहे हुए ज्ञान का स्वरूप जान। अपना वीतरागी ज्ञानस्वभाव ही तुझे शरणभूत है, अन्य कोई नहीं। भगवान, अंतर में एकबार अपने आत्मा की ओर तो देख!

वीर सं. 2500
श्रावण-भाद्रपद
सितम्बर 1974

आत्मधर्म

वर्ष 30 वाँ
अंक 4-5
[352]

हे पंच परमेष्ठी भगवंतों! पधारो... पधारो...!

[साधक को पंच परमेष्ठी का कभी विरह नहीं है]

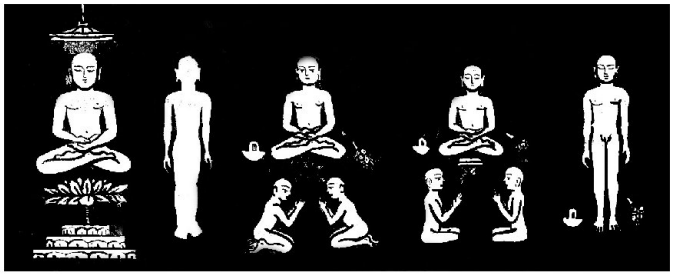

'हे पंच परमेष्ठी भगवंत! अपने स्वसंवेदनज्ञान के सामर्थ्य द्वारा आपके स्वरूप का साक्षात्कार करके मैं आपको नमस्कार करता हूँ।' प्रवचनसार जैसे महान परमागम का प्रारंभ करते हुए उत्कृष्ट मंगलरूप से सर्व पंच परमेष्ठी भगवंतों को आत्मा में बुलाकर अर्थात् ज्ञान में उनके स्वरूप का साक्षात्कार करके, आराधकभाव की झंकार उठानेवाला जो अपूर्व मंगलाचरण किया है – उनके भावपूर्ण प्रवचन आप इस अंक में पढ़ेंगे, तब आपको ज्ञात होगा कि पंच परमेष्ठी भगवंतों के प्रति स्वामीजी के अंतर में परम बहुमान की कैसी अद्भुत ऊर्मियाँ उल्लसित होती हैं। वाह रे वाह! इस पंचम काल में भी पंच परमेष्ठी का विरह नहीं है। पंचम काल में भी साधक के ज्ञान में पंच परमेष्ठी भगवंत साक्षात् विद्यमान हैं। स्वसंवेदनज्ञान में ऐसे साक्षात्कारपूर्वक पंच परमेष्ठी को नमस्कार करने से आत्मा भी उन्हीं के मार्ग पर चलता है।

[इस अंक का भावपूर्ण संपादकीय लेख आगे पढ़ें।]

प्रवचनसार

अतीन्द्रियज्ञान और अतीन्द्रियसुख की मंगल वीणा

आचार्यदेव विदेहक्षेत्र में गये... अतीन्द्रियज्ञान और अतीन्द्रियसुखरूप परिणमित तीर्थंकरदेव तथा अनेक केवली भगवंतों को साक्षात् देखा, शुद्धोपयोगरूप परिणमित हो-होकर केवलज्ञान की साधना करनेवाले गणधरादि वीतराग संतों के समूह को देखा; अपने आत्मा में ऐसी शुद्धोपयोग की धारा प्रवाहित थी और फिर ॐकारध्वनि जिन-प्रवचन में अतीन्द्रियज्ञान-सुख का साक्षात् श्रवण किया... इन सबका स्रोत आचार्यदेव ने इस प्रवचनसार में भर दिया है... और उसके द्वारा भरतक्षेत्र के जीवों को अतीन्द्रियज्ञान और अतीन्द्रिय-आनंद की ही भेंट दी है। आज कुन्दकुन्दस्वामी की यह भेंट पूज्य स्वामीजी हम सबको दे रहे हैं... और अतीन्द्रियज्ञान-आनंद के घूँट पिला रहे हैं। लो... चैतन्यरस का पान करो!

मोक्ष की आराधना का मंगल-महोत्सव

महोत्सव के मंडप में पंच परमेष्ठी भगवंतों का पदार्पण।
भवसमुद्र के किनारे पहुँचे हुए महात्मा द्वारा शुद्धोपयोग की झंकार।

प्रवचनसार के मंगलाचरण में पाँच गाथाओं द्वारा जब पंच परमेष्ठी भगवंतों को बुलाकर उन्हें वंदन करने का भावभीना वर्णन चलता है, तब प्रवचन में स्वामीजी कैसे अद्भुत भाव से प्रफुल्लित हो जाते हैं। वह तो साक्षात् श्रोता ही जानते हैं। यहाँ दिये गये प्रवचन में से आत्मधर्म के पाठकगण उसकी कुछ झाँकी कर सकेंगे। पाँच वर्ष पूर्व जब इस प्रवचनसार के मंगल प्रवचन आत्मधर्म में प्रकाशित हुए, और उन्हें पढ़कर स्वामीजी को जो महान प्रमोद जागृत हुआ, वह आज भी याद आता है। उस समय 'आत्मधर्म' के लिये पूज्य स्वामीजी के श्रीमुख से अति प्रमोदपूर्वक 'धन्यवाद' के उद्गार निकले थे। आज फिर स्वामीजी के वैसे ही अद्भुत भावपूर्ण प्रवचन यहाँ देते हुए आनंद होता है। जिज्ञासु साधर्मियो! तुम भी अति बहुमानपूर्वक जिनवाणी से झरते हुए आनंदरस का पान करो।

—ब्रह्मचारी हरिलाल जैन

मोक्ष के महोत्सव का मंगल मेला

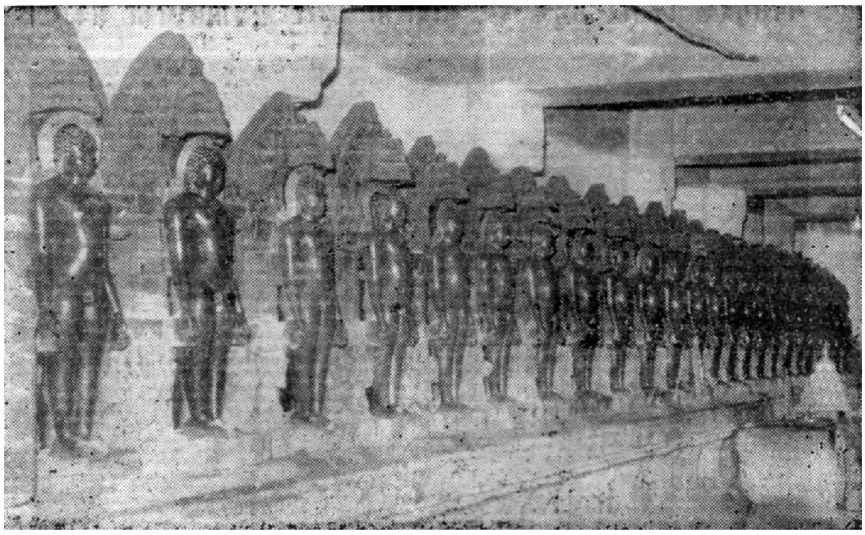

पूज्य स्वामीजी के प्रवचन में एक ओर प्रवचनसार और दूसरी ओर समयसार कलश—मानों अनेकांतमय जिनवाणी रथ के दो पहिये। इन दोनों पहियों पर जिनवाणी का रथ आज भी मोक्षमार्ग की ओर दौड़ रहा है। समयसार का मंगलाचरण अर्थात् सिद्धपद की धुन... और प्रवचनसार का मंगलाचरण अर्थात् पंच परमेष्ठी की धुन।—इसप्रकार सबेरे और दोपहर के प्रवचन सुनकर तो ऐसा लगता है जैसे सोनगढ़ में सिद्ध भगवंतों और पंच परमेष्ठी भगवंतों का मंगल मेला भरा है।—पंच परमेष्ठी मानों साक्षात् पधारे हों!—ऐसा वातावरण वर्त रहा है। पूज्य स्वामीजी श्रोताओं को ऐसे भाव में झुलाते हैं कि जिन्हें मोक्ष की अभिलाषा हो, वे इस मेले में चले आओ। मोक्ष का यह मंगलमंडप सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानरूपी द्वारों से तथा वीतराग चारित्ररूपी तोरण से सुशोभित हो रहा है। पंच परमेष्ठी और सिद्ध भगवंतों को साथ लेकर अर्थात् उनके शुद्ध स्वरूप को अपने ज्ञान में लेकर जो मुमुक्षु इस मेले में आया, वह मुमुक्षु अवश्य मोक्ष प्राप्त करेगा।

ऐसे मंगल उत्सव-प्रसंग का आनंदरस झरता हुआ प्रवचन आप यहाँ पढ़ेंगे।

अपूर्व उमंग भरे वातावरण में प्रवचनसार का प्रारंभ
वीतरागी संतों ने परम आनंद की प्याऊ खोली
पिपासु जीवो जाओ... और आनंदरस का पान करो!

आत्मा के अतीन्द्रिय आनंदरूप और सुखरूप परिणमित हुए भगवंत पंच परमेष्ठी की स्थापनापूर्वक, परम आनंद की प्याऊ जैसा यह प्रवचनसार-परमागम आज (श्रावण शुक्ला सप्तमी को) प्रारंभ हुआ है। श्रावण शुक्ला सप्तमी को 'मोक्ष सप्तमी' कहा जाता है; आज सम्मेदशिखर की सुवर्णभद्र टोंक से पारसनाथ भगवान मोक्ष पधारे हैं। अहा, यह मोक्षसुख अर्थात् आत्मा का अतीन्द्रिय सुख, उसकी प्राप्ति का मार्ग बतलानेवाले इस प्रवचनसार पर आज प्रवचन हो रहे हैं।

स्वसंवेदनप्रत्यक्ष ऐसा ज्ञानस्वरूप मैं—आत्मा, पंच परमेष्ठी भगवंतों को अपने ज्ञान में साक्षात् वर्तमान कालगोचर करके, नमस्कार करता हूँ।—इसप्रकार मोक्ष की आराधना के महोत्सव में पंच परमेष्ठी भगवंतों को बुलाकर आचार्यदेव ने अपूर्व मंगल सहित प्रवचनसार का प्रारंभ किया है। उस प्रवचनसार पर आज छठवीं बार प्रवचन प्रारंभ हो रहे हैं। परमानंद के पिपासु भव्य जीवो, उसमें झरते शांतरस का पान करके तृप्त होओ! [संपादक]

आज इस प्रवचनसार शास्त्र का मंगल प्रारंभ होता है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने जिनवचन का सार इसमें भरा है; भावश्रुतज्ञान द्वारा उसे जानने पर दिव्य ज्ञानानंदस्वभावी आत्मा की अपूर्व प्राप्ति होती है। टीकाकार श्री अमृतचंद्रस्वामी ने 'तत्त्वप्रदीपिका' की टीका में उसके रहस्य को खोलकर अमृत बहाया है। मंगलरूप में स्वानुभव से प्रसिद्ध ऐसे उत्कृष्ट ज्ञानानंदस्वरूप आत्मा को नमस्कार किया है, तथा अनेकांत ज्ञान की स्तुति की है।

जो ज्ञान आत्मा के आनंद को प्रगट करे और राग से विरक्त परिणमित हो, उसी को जिनागम का सच्चा ज्ञान कहते हैं। जिनागम आत्मा के आनंदस्वरूप को बतलाता है, इसलिये सम्यक्त्वी को जिनागम की भक्ति होती है।

सिद्ध भगवंतों को जो महान ज्ञान-आनंद प्रगट हुए, वे आत्मा में से ही प्रगट हुए हैं—ऐसी जो प्रतीत करते हैं, उन्हें वैसे ज्ञान-आनंदस्वरूप अपने आत्मा की प्रतीति होती है, और उसका स्वाद आता है। अहा, आत्मा की वीतरागी शांति के स्वाद का क्या कहना? जगत की अन्य किसी वस्तु में वैसा स्वाद नहीं है।

ऐसे उत्कृष्ट ज्ञान-आनंद स्वरूप को नमस्कार करने से आत्मा में राग से भिन्न मंगलभाव प्रगट होता है।

सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ कि आत्मा सुख के सिंहासन पर विराजमान हो गया... वहाँ पुण्य-पाप, राग-द्वेष भावों से विरक्त होकर वह चैतन्य के ज्ञान-आनंद स्वरूप का रसिक हुआ है, अब पर्याय-पर्याय में उसे चैतन्यरस झरता है।

अहा, सर्वज्ञ की वीतरागी वाणीरूप जिनागम! चैतन्य के आनंदस्वरूप का साक्षात्कार करता है, और संसार से निवृत्ति कराके आत्मा को मोक्ष की आराधना कराता है—ऐसा जिनागम जयवंत हो!

ऐसा जिनागम और उससे हुआ स्वसंवेदन जयवंत वर्तता है।

अहा, भरतक्षेत्र में बारह-बारह वर्ष के भयंकर अकाल पड़े, तथापि ऐसे वीतरागी अमृत से भरपूर जिनागम तो जयवंत विद्यमान हैं; यह भव्य जीवों का महान भाग्य है।

इस मनुष्य क्षेत्र में, महाविदेहक्षेत्र में सीमंधर परमात्मा तीर्थंकररूप से वर्तमान में विराजमान हैं। महावीर भगवान २५०० वर्ष पूर्व मोक्ष को पधारे। वे वर्तमान में 'णमो सिद्धाणं' ऐसे सिद्धपद में विराजमान हैं; उन्होंने जो उपदेश दिया, उसकी परंपरा आज भी चल रही है। उसीप्रकार विदेह में विराजमान तीर्थंकर परमात्मा सीमंधर प्रभु जो उपदेश समवसरण में दे रहे हैं, उसे श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने साक्षात् ग्रहण किया था। उस जिनोपदेश को प्रवचन कहा जाता है, उस प्रवचन का सार आचार्यदेव ने इन परमागमों में भरा है। अपने स्वानुभव के वैभवपूर्वक इन शास्त्रों की रचना की है, वे आत्मा का शुद्ध स्वरूप बतलाकर अतीन्द्रियज्ञान और आनंद की प्राप्ति कराते हैं। ऐसे एक महान परमागम पर आज प्रवचन प्रारंभ होते हैं।

प्रथम मंगलरूप से अमृतचंद्राचार्य उत्कृष्ट ज्ञानानंदस्वरूप आत्मा को नमस्कार करते हैं।

[कलश : १]

जो सर्व व्यापक अर्थात् समस्त पदार्थों को जाननेवाले ऐसे चैतन्यस्वरूप है, जो आत्मा की स्वानुभूति द्वारा प्रसिद्ध है और जो ज्ञान-आनंदस्वरूप है, ऐसे उत्कृष्ट आत्मा को नमस्कार हो!

ज्ञान और आनंदस्वरूप आत्मा की प्रसिद्धि स्वानुभव द्वारा होती है; उसके लिये दूसरा कोई उपाय नहीं है। उस अनुभव के लिये उसका स्वरूप लक्षगत करके, उसके रसपूर्वक बारंबार अंतर में उसका मंथन करना चाहिये। चैतन्योन्मुख भाव द्वारा उसका अनुभव होता है और ज्ञान-आनंद का स्वाद आता है; ऐसा भगवान का मार्ग है; इसके अतिरिक्त राग द्वारा या पर की सन्मुखता द्वारा आत्मा का ज्ञान-आनंद प्रगट नहीं होता।—इसलिये वह भगवान का मार्ग नहीं है।

भगवान का मार्ग संसार से भले ही भिन्न हो, परंतु पंच परमेष्ठी भगवंतों के साथ मिलता है। जिसमें स्वसन्मुख आनंद का वेदन हो, ऐसा जिन भगवान का मार्ग है, वह अपूर्व पात्रता से प्राप्त होता है।

अहा, आत्मा की अनुभवदशा तो केवलज्ञानलक्ष्मी का लाभ करानेवाली है। जगत की जड़ लक्ष्मी के ढ़ेर का जिसके सामने कुछ भी मूल्य नहीं, ऐसी केवलज्ञानलक्ष्मी का दिव्य-अद्भुत आनंदवैभव आत्मा के अनुभव से ही प्राप्त होता है।—अन्य किसी कारण की (पुण्य या संयोग की) अपेक्षा उसमें नहीं है। मात्र अपने ज्ञानानंदस्वरूप के अवलंबन से केवलज्ञान और महा आनंद प्रगट होता है, ऐसा आत्मा का स्वभाव है; ऐसे उत्कृष्ट ज्ञान-आनंदस्वरूप की प्रसिद्धि के लिये, उस उत्कृष्ट ज्ञानानंदस्वरूप आत्मा को नमस्कार किया है। ऐसा अपूर्व मंगल करके, परमानंदरूपी सुधारस के पिपासु जीवों के हेतु इस परमागम की टीका द्वारा आत्मतत्त्व प्रगट किया गया है—उस आत्मतत्त्व की अनुभूति द्वारा भव्य जीव निर्विकल्परस का पान करके अपनी तृषा तृप्त करते हैं, और आनंदरस से तृप्त होते हैं।

राग का अनुभव तो जीव ने अनंत काल किया, परंतु उसकी प्यास न मिटी; जिसे आनंद

की अभिलाषा है, जिसे चैतन्य का शांतरस पान करने की तृषा लगी है, ऐसे जीवों के लिये इस प्रवचनसार द्वारा आचार्यदेव ने वीतरागी शांतरस की प्याऊ खोली है—हे जीवो आओ! आत्मतत्त्व का शुद्धस्वरूप जानकर निर्विकल्प आनंदरस का पान करो...!

जो ज्ञान सामान्यस्वरूप है, वही ज्ञान विशेषस्वरूप है—सामान्य-विशेष दोनों में व्याप्त ऐसा अनेकांतमय ज्ञान जयवंत वर्तता है; और ऐसा अनेकांतमय ज्ञान राग से भिन्न परिणमित होता हुआ मोह को जीत लेता है... और आत्मा को महान आनंद प्राप्त कराता है। दूसरे मंगल श्लोक में अनेकांतमय ज्ञान की स्तुति करते हुए कहते हैं कि अनेकांतमय आत्मा के सत्यस्वरूप को प्रकाशित करके, मोह-अंधकार को नष्ट करता है; ऐसा अनेकांतमय चैतन्यतेज जयवंत वर्तता है।

पश्चात् तीसरे श्लोक में कहते हैं कि—परम आनंद के पिपासु भव्य जीवों को चैतन्यरस का अतीन्द्रिय अमृत पिलाने हेतु इस परमागम की टीका रची जा रही है। आत्मा के परम आनंद की जिसे अभिलाषा है, संसार संबंधी कोई अभिलाषा जिसे नहीं है, मात्र आत्मशांति की ही इच्छा है, ऐसे आनंद पिपासु जीवों के लिये इस प्रवचनसार परमागम की रचना होती है; उसके द्वारा शुद्धात्मतत्त्व का ज्ञान करके भव्य जीव अंजलि भर-भरकर अतीन्द्रिय आनंद का पान करना। यह परमागम आत्मा के परम आनंद को पिलानेवाला है। संतों ने अतीन्द्रिय अनुभूति में जो चैतन्यरस का स्वाद लिया, वह इस परमागम द्वारा जीवों को देते हैं। जगत की जिन्हें चिंता नहीं, संसार के किसी भी पद की जिन्हें इच्छा नहीं, चैतन्य के आनंद की ही जिन्हें इच्छा है,—एक आत्मार्थ का ही जिन्हें कार्य है—ऐसे जीवों का हित विचारकर इस परमागम द्वारा तत्त्वों का स्वरूप प्रगट किया गया है—कि जिन तत्त्वों को जानने पर आनंदमय प्रशमरस वेदन में आता है।

—००—

जो शांत अनाकुल चैतन्यरसरूप से स्वाद में आये, वही आत्मा है। वही धर्मी का स्व है। वही ज्ञानी की अनुभूति का विषय है; और जो आकुलतारूप से-विकाररूप से स्वाद में आये, वह आत्मा नहीं है, वह धर्मी का स्व नहीं है, वह ज्ञान की अनुभूति से बाहर रह जाता है। देखो, यह भेदज्ञान! अनुभव द्वारा परभावों से ऐसा भेदज्ञान हो, तब धर्म का प्रारंभ होता है।

श्रावक के आचार

[४]

जैन सद्गृहस्थ श्रावक का जीवन कैसे सुंदर धार्मिक आचरण से सुशोभित होता है—उसका यह वर्णन है। उसमें मुख्य कर्तव्यरूप सम्यक्त्व की महिमा, तथा उसके लिये सच्चे देव-गुरु-शास्त्र के स्वरूप की पहिचान कैसी होती है, वह आप गतांक में पढ़ चुके हैं। अब उस सम्यग्दर्शन के अतिरिक्त अहिंसादि व्रत कैसे होते हैं, वह आप यहाँ पढ़ेंगे। श्री सकलकीर्ति रचित श्रावकाचार (अध्याय-१२) से यह संक्षिप्त सार दिया गया है। [—संपादक]

श्रावक के ११ स्थानों में प्रथम दर्शनप्रतिमा है। सम्यक्त्वादि सहित जिसके आठ मूलगुणों का पालन है और सात व्यसनों का त्याग है, उसे जिनदेव ने दर्शनप्रतिमायुक्त दार्शनिक श्रावक कहा है।

माँस-मधु-शराब तथा पाँच उदम्बर फलों का निरतिचार त्याग, वह अष्ट मूलगुण हैं। (अंडा भी पंचेन्द्रिय जीव का माँस है।)

माँस का त्याग किये बिना जो जीव धर्म की इच्छा करते हैं, वे जीव आँख के बिना नाटक देखने की इच्छा रखनेवाले जैसे हैं। रोगादि दूर करने के हेतु भी जो जीव मधु का उपयोग कते हैं, वे जीव महा पाप से नरकादि दुर्गति में चले जाते हैं।

प्राण चले जायें तो भले, परंतु चाहे जैसे अकाल आदि में भी, असंख्य त्रस जीवों से युक्त ऐसे पंच उदम्बर फल आदि का भक्षण करना उचित नहीं है। हे मित्र! धर्मप्राप्ति के हेतु तू उन सबका त्याग कर।

आठ मूलगुण, वह बाहर व्रतों का मूलकारण है, और बाहर व्रतों के पहले वे धारण

किये जाते हैं, इसलिये उन्हें श्रावक के मूलगुण कहा गया है। वह स्वर्गादि का कारण है।

जुआ, माँस, शराब, वेश्या, शिकार, चोरी, परस्त्री—इन सातों का सेवन महा पापरूप है, और सात नरक में जाने का यह प्रवेश द्वार है; इसलिये उन सातों पाप-व्यसनों को हे भाई! तू सर्वथा छोड़।

पाप-राजा ने अपना राज्य दृढ़ करने और अपने धर्मशत्रु का नाश करने के लिये यह सात व्यसनरूपी सेना रखी है। (परंतु हे मुमुक्षु! तू उसके वश न होना। अपने सम्यक्त्व और ज्ञान-वैराग्य के सामर्थ्य द्वारा उसका समूल नाश कर देना। सम्यक्त्वरूपी अपने सुदर्शनचक्र और आठ अंगरूप अपनी सेना के द्वारा सप्त व्यसन की सेना को नष्ट करके अष्टगुणों को धारण करना)।

सर्व जीवों के प्रति दयारूप अहिंसा को गणधरदेव ने व्रत की जननी कहा है। पाँचों व्रत अहिंसा-माता के ही पुत्र हैं।

अहिंसा-माता, माता की भाँति सर्व जीवों का हित करनेवाली है; तथा वह गुणों की जन्मभूमि है, सुखकारक है और सारभूत सर्व गुणों को देनेवाली है; वह सुखनिधान और रत्नत्रय की खान है। सद्धर्मरूपी उद्यान विकसित करके उस पर स्वयं-मोक्ष के फल पकाने के लिये तथा दु:खदाह दूर करके शीतल शांत छाया देने के लिये, इस अहिंसा को भगवान ने उत्तम मेघवर्षा समान कहा है। मुक्ति की सखी ऐसी इस अहिंसा का मुनिवर भी सेवन करते हैं।

मुनि या श्रावक के समस्त व्रत इस एक 'अहिंसाधर्म की सिद्धि' के लिये ही कहे गये हैं। अहिंसा का पालन करनेवाले को समस्त व्रतों का पालन सहजरूप से होता है। इसके बिना तप-व्रत आदि सब एकरहित शून्य से समान निष्फल है।

अरे! दयारहित जीवन किस काम का?

अहिंसारूप वीतरागभाव ही सिद्धांत का सर्वस्व है, वही चारित्र का प्राण है, और वही धर्मवृक्ष का मूल है।

कदाचित सर्प के मुँह में अमृत उत्पन्न हो और रात्रि में सूर्योदय हो जाये, परंतु हिंसा द्वारा तो धर्म कभी नहीं हो सकता।

हे श्रावकोत्तम! अहिंसाव्रत के पालन के लिये, ताजा छना हुआ पानी ही उपयोग में

लेना चाहिये। घुना हुआ अनाज या सड़े हुए फल उपयोग में नहीं लेना चाहिये। शत्रु को, कुत्ता आदि पशुओं को या बालक को हाथ या लकड़ी से नहीं मारना चाहिए—क्योंकि यह तो राक्षस का कार्य है। मुँह से भी 'मैं तुझे मार डालूँगा' आदि हिंसा के वचन नहीं बोलना चाहिये। अपनी सर्व प्रवृत्तियाँ जीवरक्षा के प्रयत्नपूर्वक सावधानी से करना चाहिये—जिससे अपने परिणामों में कषाय की उत्पत्ति न हो, और व्रत के योग्य शुद्ध-अकषाय परिणाम बने रहें।

अरे जीव! तुझे एक तिनके के कर्कश स्पर्श द्वारा भी दु:ख लगता है, तो अन्य जीवों पर तू शस्त्र किसप्रकार चलाता है?—क्या तू निर्दयी है! अरे, निर्दयरूप हिंसा की तो जगत के सभी विद्वानों ने निंदा की है; क्योंकि वह नरक का कारण है और दु:ख देनेवाली है। ऐसी पापमय हिंसा को छोड़... और जीवों पर दया कर... अकषायभाव कर।

हे प्रभु! अहिंसा व्रत के पालन में कौन प्रसिद्ध है? और उसे क्या उत्तम फल मिला? उसकी कथा सुनाओ।

सुनो, हे वत्स! अहिंसाव्रत के पालन में यमपाल चांडाल की कथा प्रसिद्ध है।

पोदनपुर नगर में महाचल नाम के राजा राज्य करते थे, उनके बल नामक पुत्र था राजकुमार दुष्ट-पापी-माँसभक्षी था। उस राज्य में यमपाल चांडाल अपराधी जीवों को फाँसी देने का कार्य करता था।

एकबार नंदीश्वर-अष्टाह्निका के पवित्र दिनों में राजा ने घोषणा की कि—यह आठ दिन महा मंगल दिन हैं, अत: सब नगरवासी धर्म की यथाशक्ति आराधना करें, और आठ दिन तक जीवों की हिंसा न करें।

— ऐसा आदेश होने पर भी राजा की आज्ञा का भंग करके, पापी राजकुमार ने एक बकरे का वध करके उसका माँस खाया।—परंतु यह सब माली ने देख लिया, और उसने राजा को खबर दी। इससे राजा क्रोधित हुए, और ऐसी जीवहिंसा करनेवाले, तथा राज्य की आज्ञा का भंग करनेवाले राजकुमार को फाँसी देने की आज्ञा दी। राजकुमार को फाँसी देने का कार्य यमपाल चांडाल को सौंपा गया।

उस दिन चतुर्दशी थी।

राजकुमार को फाँसी देने के लिये सैनिक यमपाल चांडाल को बुलाने गये। राजकुमार को फाँसी देने से उसके बहुमूल्य आभूषण तथा वस्त्र यमपाल को मिलेंगे, और वह बहुत प्रसन्न होगा —ऐसा समझकर सैनिकों ने उसके घर जाकर आवाज लगाई।

दूर से सिपाहियों को देखकर, यमपाल घर में छुप गया, और स्त्री से कह दिया कि राजा के सिपाही बुलाने आयें तो कह देना कि घर पर नहीं हैं, बाहर गाँव गये हैं। (पाठकगण! यमपाल क्यों छुप गया?-क्या वह सिपाहियों से डरता था? नहीं; उसके छुप जाने का दूसरा कारण था। जिसे तुम अभी जान लोगे।)

सिपाहियों ने आकर यमपाल को आवाज दी।

उसकी स्त्री ने जवाब दिया कि वे दूसरे गाँव गये हैं, घर पर नहीं हैं।

सिपाहियों ने सिर ठोकते हुए कहा कि—अरे! पुण्यहीन यमपाल, आज ही दूसरे गाँव गया है। यदि वह होता तो राजकुमार को फाँसी देने से आज उसे कितने सुवर्ण और रत्नजड़ित आभूषण प्राप्त होते! अब तो दूसरा कोई उन्हें ले जायेगा।

सिपाहियों की बात सुनकर चांडाल की स्त्री का मन उन आभूषणों के लिये ललचा उठा। उससे न रहा गया, इसलिये उसने हाथ का संकेत करके, यमपाल घर में ही छुपा है—ऐसा सिपाहियों को बतला दिया।

सिपाहियों ने क्रोधित होकर यमपाल को पकड़ा और जबरदस्ती उसे फाँसी के स्थान पर ले गये। वहाँ राजकुमार को सौंपकर कहा—तू इसे फाँसी चढ़ा और इसके आभूषण ले जा।

यमपाल ने कहा कि—मैं आज इसे फाँसी नहीं चढ़ाऊँगा।

बुद्धिहीन सिपाही यमपाल के भाव को न समझ सके, और धमकी देकर यमपाल से कहा कि—राजकुमार अपराधी है, और राजा की आज्ञा है, इसलिये तू इसे फाँसी चढ़ा दे। यदि राजा की आज्ञा न मानेगा तो तू भी इसी के साथ मरेगा।

यमपाल ने निर्भय होकर उत्तर दिया कि—चाहे जो हो, किंतु आज मैं राजकुमार को फाँसी नहीं दूँगा।

अतः सैनिक यमपाल को पकड़कर राजा के पास ले गये और कहा कि—महाराज!

यह चांडाल राजकुमार को आपका पुत्र समझकर फाँसी नहीं देता और आपकी आज्ञा का भंग करता है।

राजा ने पूछा कि तू क्यों राजपुत्र को फाँसी नहीं देता ? मेरी आज्ञा है, और फाँसी देने का तेरा कार्य है। फाँसी देने से तुझे लाखों रुपये के आभूषण प्राप्त होंगे—फिर भी तू आज क्यों इंकार करता है ?

चांडाल ने विनय से कहा—महाराज ! मेरी बात सुनो ! आज चतुर्दशी है; और चतुर्दशी के दिन किसी भी जीव का वध न करना—ऐसी मेरी प्रतिज्ञा है। प्राण चले जाने पर भी मैं अपनी प्रतिज्ञा का पालन करूँगा; इसलिये आज मैं किसी जीव का घात नहीं करूँगा। और आजकल तो नंदीश्वर की अष्टाह्निका के पवित्र दिवस हैं, फिर मैं हिंसा का पाप कैसे करूँ ?

अब राजा को आश्चर्य हुआ; राजा ने पूछा कि हे भाई ! चतुर्दशी के दिन किसी भी जीव को न कारने की प्रतिज्ञा तूने किस कारण और कब ली ?

तब यमपाल ने कहा—महाराज ! मेरी एक छोटी-सी कथा सुनो। एकबार मुझे एक भयंकर सर्प ने काटा और उसके विष से मैं मूर्छित हो गया; तब मेरे कुटुंबीजनों ने मुझे मरा हुआ समझकर स्मशान में फेंक दिया। परंतु दैवयोग से वहाँ सर्वोषधि-ऋद्धि के धारक एक जैन मुनिराज पधारे, और उनके शरीर से स्पर्शित हुई वायु मेरे शरीर से लगते ही, शुभकर्म के उदय से मेरी मूर्च्छा दूर हो गई, मेरा विष उतर गया और मैं जीवित हो गया। अहा, उन मुनिराज की वीतरागता की और उनके प्रभाव की क्या बात ! बस, तभी से उन परम उपकारी मुनिराज के समक्ष मैंने व्रत लिया कि मैं चतुर्दशी के दिन किसी भी जीव की हिंसा नहीं करूँगा। इसलिये हे राजन ! इन पर्व के दिनों में अपने समस्त पापों को शांत करने के लिये मैं किसी भी जीव का वध नहीं करूँगा। अब हे राजन ! आपको जैसा योग्य लगे वैसा करो। (यहाँ, ऐसे आंशिक अहिंसा के पालन में भी यमपाल को जो श्रद्धा थी, उतना ही उदाहरण लेना। और उस श्रद्धा में दृढ़ता के कारण वह पूर्ण अहिंसा की ओर अग्रसर हो सका। इसलिये शास्त्रों में उसका उदाहरण लिया है। अहिंसा के एक अंश की भी जिसे रुचि हुई और अंत समय तक उसका पालन न छोड़ा, उसे अव्यक्तरूप से पूर्ण अहिंसारूप वीतरागभाव की रुचि हुई और उसकी श्रद्धा का बीजारोपण हुआ।)

इस प्रकार यमपाल ने अपने व्रत की बात कही परंतु राजा को यमपाल की बात पर विश्वास नहीं आया। राजा को ऐसा लगा कि ऐसा उत्तम अहिंसा-व्रत इस अस्पृश्य चांडाल को कहाँ से होगा ?—ऐसा विचारकर राजा ने कोतवाल को आज्ञा दी कि यह राजकुमार तथा चांडाल-दोनों दुष्ट हैं, अत: इन दोनों को रस्सी से बाँधकर मगरमच्छों से भरे हुए गहरे सरोवर में फेंक दो।

—राजा की ऐसी आज्ञा सुनकर भी यमपाल अपने व्रत में दृढ़ रहा कि प्राण जायें तो भले जायें परंतु मैं व्रत का भंग नहीं करूँगा;—इसप्रकार मरण का भय छोड़कर निर्भय सिंह की भाँति वह व्रत पालन में दृढ़ रहा, और उत्तम भावना भाने लगा... वीतरागी अहिंसा की ओर उसके परिणाम उल्लसित होने लगे।

इधर सैनिकों ने राजा की आज्ञानुसार दोनों को बाँधकर सरोवर में फेंक दिया। पापी राजकुमार को तो मगर खा गये। परंतु यमपाल चांडाल के व्रत के माहात्म्य से प्रभावित होकर एक देवी ने सरोवर के बीच रत्नसिंहासन की रचना करके यमपाल को उस पर विराजमान किया, और बाजे बजाकर उसके व्रत की प्रशंसा की। ऐसा दैवी प्रभाव देखकर राजा डर गया और प्रभावित होकर उसने यमपाल का बड़ा सम्मान किया। इसप्रकार व्रत के प्रभाव से यमपाल जैसा चांडाल भी देव और राजा द्वारा सम्मानित होकर स्वर्ग में गया। शास्त्रकार कहते हैं कि अहिंसा के एक अंश के पालन से भी चांडाल जैसे जीव को महान फल प्राप्त हुआ, तो संपूर्ण वीतरागभावरूप श्रेष्ठ अहिंसा के पालन से जो उत्तम फल प्राप्त होगा, उसकी महिमा कौन कह सकता है ?—ऐसा जानकर हे भव्य जीव! तुम अहिंसाव्रत का पालन करो। (हिंसा के लिये दुष्ट धनश्री की कथा प्रसिद्ध है कि जिसने विषय-वासनावश अपने पुत्र की ही हिंसा करायी और पाप से दुर्गति में गई।)

❀ ❀ ❀

[श्रावक के सत्य-व्रत का वर्णन : श्रावकाचार अध्याय : १३]

सत्पुरुषों के सत्य आदि व्रतों का वर्णन अहिंसा व्रत की रक्षा के हेतु किया है; इसलिये समस्त जीवों का हित करनेवाला और श्रेष्ठ व्रत की सिद्धि का कारण ऐसा उत्तम सत्यव्रत कहा जाता है। जो धर्मात्मा श्रावक स्थूल असत्य बोलते नहीं, दूसरों से बुलवाते नहीं, या बोलनेवाले का अनुमोदन नहीं करते, उन्हें सत्य-अणुव्रत होता है।

सत् को जाननेवाले ऐसे बुधजन गृहस्थों को, सबका हित करनेवाले मर्यादित और मधुर वचन बोलना चाहिये, किसी की निंदा नहीं करना चाहिये और सर्व जीवों को सुख देनेवाली भाषा बोलना चाहिये।

हे भव्य! तू सदा ऐसे ही वचन बोल जिनसे अपना आत्मकल्याण हो, जो धर्म का कारण हों, यश देनेवाले हों और सर्वथा पापरहित हों।

तथा बुधजनों को दूसरे जीवों का भी हित करनेवाले, राग-द्वेष रहित, और धर्म तथा मोक्षमार्ग का उत्साह बढ़ानेवाले वचन ही कहना चाहिये।

ज्ञानीजन सदा जिनागम-अनुसार, अनिंद्य-सुंदर, प्रशंसनीय, विकथादिक से रहित और धर्मोपदेशयुक्त वचन ही बोलते हैं।;;

श्रावक द्वारा दूसरे के हित के लिये कदाचित् कठोर वचन भी कहे जायें, अथवा दूसरे जीवों की रक्षा या हित के लिये (परंतु किसी का अहित न हो इसप्रकार) कथंचित् असत्य भी बोलने में आये तो वह भी (उसमें अहिंसा का ही अभिप्राय होने से) सत्य माना गया है। ओर जो दूसरों को दु:ख देनेवाले हों, सुनने में भय या दु:ख उत्पन्न करनेवाले हों, जीवों के वध या बंधन का कारण हों—ऐसे सत्य वचनों को भी विद्वानों ने असत्य ही माना है।

सत्य है, वह अमृत समान है; उससे जीवों को धर्म की प्राप्ति होती है। अहा, इस जगत में सर्व जीवों को सुख देनेवाले, सबका हित करनेवाले और प्रशंसनीय ऐसे सत्य वचनरूपी अमृत विद्यमान है, तो फिर कौन ऐसा बुद्धिमान होगा कि जो असत्य, कटु और निंद्य वचन बोलेगा?

हे मित्र! प्राण जाने का प्रसंग आ जाये, तथापि तू ऐसे निंद्य, धर्मविरुद्ध वचन मत बोलना। जो वचन कठोर एवं अप्रिय हों, जो पाप के उपदेश से युक्त हों, जो धर्म से रहित हों, जो क्रोध उत्पन्न करनेवाले हों या दूसरे की निंदा करनेवाले हों, जो जीवों को भय उत्पन्न करनेवाले हों, जो विषय-कषाय के पोषक हों, जो देव-गुरु-धर्म में दोष लगानेवाले हों, जो शास्त्र-विरुद्ध हों या देशविरुद्ध हों, जो दुर्जन लोगों द्वारा बोले जाते हों—इत्यादि सर्व प्रकार के असत्य वचनों को हे मित्र! तू सर्वथा छोड़; मृत्यु आने पर भी ऐसे निंद्य-असत्य वचन न बोलना।

मिथ्यामार्ग का उपदेश तो अनके जीवों का अहित करनेवाला और महान असत्य है। दुष्ट जीवों ने असत्य वचनों द्वारा कुशास्त्रों की रचना करके लोगों को हिंसक एवं धर्म से विमुख

कर दिया है, कुशास्त्र रचनेवाले जीव असत्यमार्ग की पुष्टि द्वारा स्व-पर का अहित करते हैं। असत्य वचन के प्रभाव से ही जिनशासन में तथा अन्यमतों में विरोध उत्पन्न हुआ है। जिनशासनानुसार सत्यमार्ग के उपदेश समान सत्य दूसरा कोई नहीं है; वह स्व-पर समस्त जीवों का हित करनेवाला है और अहिंसादि का पोषक है। इसलिये हे भव्य! ऐसे सत्य जिनमार्ग को जानकर तू उसका आदर कर; और जिनमार्ग के अनुसार ही सत्य वचन बोल।

दुर्जन मनुष्य के मुँहरूपी बिल में नागिन जैसी जीभ रहती है, वह असत्यरूपी हलाहल विष द्वारा अनेक जीवों का घात करती है (-जीवों का बुरा करती है)। अरे! विष्टा खा लेना अच्छा परंतु अपनी जीभ से हिंसा करनेवाले, मिथ्यामार्ग के पोषक या पाप और दुख उत्पन्न करनेवाले असत्य वचन बोलना कदापि योग्य नहीं है। इसलिये हे मित्र! विष समान ऐसे असत्य को तू शीघ्र छोड़ दे। असत्य वचनरूपी पाप के फल में जीव गूँगे-बहरे होते हैं और सत्य के सेवन से ज्ञान, विद्या आदि की वृद्धि होती है।

[सत्य व्रत के पालन में धनदेव की और असत्य सेवन में श्रीभूति तथा वसुराजा की कथा प्रसिद्ध है।]

—००—

अचौर्य व्रत का वर्णन : अध्याय-१४

जो स्वयं अनंत गुण के सागर हैं और अनंत गुण के प्रदाता हैं—ऐसे श्री अनंत-जिन को, अनंत गुण की प्राप्ति हेतु नमस्कार करके अहिंसाव्रत की रक्षा के हेतुरूप अचौर्य व्रत कहते हैं।

हे भव्य! बिना दिये हुए दूसरों के धन-धान्य आदि का ग्रहण न करना, वह अचोरी है; बिना दिये हुए दूसरों का धन लेने की वृत्ति का तू त्याग कर; क्योंकि सर्प को पकड़ना अच्छा है परंतु दूसरों का धन लेना उचित नहीं है, भीख माँगकर पेट भर लेना अच्छा परंतु दूसरे का धन चुराकर घी-शक्कर खाना अच्छा नहीं। चोरी का पाप करनेवाले जीव का मन कहीं स्वस्थ नहीं रह सकता... अरे! चोर को शांति कहाँ से हो? उसका चित्त सदा शंकाशील रहता है।

तीन लोक की उत्तम लक्ष्मी धनवान के यहाँ नीतिमार्ग से आती है। (चक्रवर्ती आदि विभूति कहीं किसी के पास चोरी करने से नहीं आती, वह तो पुण्यवंत जीवों को नीतिमार्ग से सहजरूप में प्राप्त हो जाती है।) धन के लोभ से सदोष (अभक्ष्य आदि का) व्यापार करना भी

उचित नहीं है। धन का नाश हो जाने पर संसारी जीवों को मरण समान दु:ख लगता है; और धन उन्हें प्राण से प्रिय लगता है, इसलिये जिसने दूसरे का धन चुराया, उसने उसके प्राण को ही चुराया है; इसलिये उसे जीवहिंसा लग गई। इसलिये हे बुद्धिमान! हिंसा-पाप से बचने के लिये तू चोरी का त्याग कर। अरे, ऐसा कौन बुद्धिमान होगा कि अल्प धन के लिये चोरी का महापाप करके नरकादि दुर्गतियों में भ्रमण करे? कुटुंबीजनों के उपभोग के लिये भी जो चोरी का पाप करते हैं, वे उस पाप का फल भोगने के लिये अकेले ही नरक में जाते हैं, जिनके लिये चोरी की, वे कुटुंबीजन कहीं साथ में नहीं जाते। ऐसा समझकर हे भव्य! तू विषसमान, अभक्ष्य समान, पाप-क्लेश तथा अपयश के कारणरूप ऐसी चोरी को छोड़... दूसरे के धन का ग्रहण करना छोड़... और संतोषपूर्वक अचौर्यव्रत का पालन कर। दूसरों के द्वारा चुराये हुए धन को भी तू अपने घर में न रख। अचौर्यव्रत के पालन में वारिषेण-राजपुत्र की कथा प्रसिद्ध है। वे स्थितिकरण में भी प्रसिद्ध हैं। (चोरी के पाप सेवन में एक ढोंगी तपस्वी की कथा प्रसिद्ध है।)

प्रश्न :- धर्मात्मा को कैसी अनुभूति होती है?

उत्तर :- धर्मात्मा जीव स्वसन्मुखता द्वारा शुद्धात्मा का अनुभव करता है, उस वर्तमान स्वोन्मुख परिणाम में उसे भूतकाल की अशुद्धता का प्रतिक्रमण वर्तता है; उसी परिणाम में वर्तमान आंशिक अशुद्धता के अभावरूप आलोचना है और उसी परिणाम में भविष्य की अशुद्धता का प्रत्याख्यान है।—इसप्रकार स्वसन्मुख अनुभव में एकाग्र एक समय के वर्तमान परिणाम में त्रैकालिक अशुद्धता का त्याग वर्तता है और त्रैकालिक शुद्धस्वभाव का उसमें ग्रहण है।—ऐसा शुद्धात्मा का अनुभव सम्यग्दृष्टि को होता है। उस अनुभव को ज्ञानचेतना कहते हैं। उस ज्ञानचेतना में आठों कर्म का और उनके फल का अभाव है। ज्ञानचेतना ने अंतरंग में शुद्धात्मा को देखा है और उस ओर उन्मुख हुई है, इसलिये उसी में एकता करके 'यह मैं' इसप्रकार शुद्धात्मा का अनुभव करती है; 'विकार वह मैं' ऐसा अनुभव वह ज्ञानचेतना कभी भी नहीं करती।—इसीलिये धर्मात्मा की अनुभूति निर्मल-सच्ची होती है। शुद्धस्वभाव का स्पर्शन (एकत्व) और परभावों का पृथक्त्व रखनेवाली धर्मात्मा की ऐसी अनुभूति, वह मोक्षमार्ग है।

श्रावण मास की शीतल आनंददायक फुहारें

जिसप्रकार श्रावण मास में आकाश में से रिमझिम बरसती हुई शीतल फुहारें हरीभरी फसल को पोषण देती हैं... उसीप्रकार श्रावण मास में जिनवाणी में से झरते हुए श्रुतज्ञान के मधुर आनंदमय झरने भव्यजीवों के अंतर में आनंद की फसल पकाने के लिये पोषण देते हैं।

चैतन्य के श्रुतज्ञान के मंथन जैसी मिठास राग की किसी भी क्रिया में कदापि नहीं होती। ज्ञानरस का मंथन ही चैतन्य की अनुभूति का कारण है... राग नहीं। इसलिये पूज्य स्वामीजी आग्रहपूर्वक कहते हैं कि—हे भाई! चैतन्य का श्रवण-मनन करने से उसमें ज्ञानरस का जो मंथन होता है, उसे मुख्य रखना, उस समय के राग को मुख्य नहीं करना। एक साथ रहने पर भी राग और ज्ञान—दोनों का कार्य बिल्कुल भिन्न है। आओ, श्रावण की श्रुत-फुहारों में चैतन्य के असंख्य प्रदेशों को भिगोकर आनंदित होओ! [-संपादक]

❀ आनंदस्वरूप आत्मा जो अंतर्मुख, इंद्रियातीत ऐसी अतीन्द्रिय ज्ञानपर्याय का विषय है। और जिसने इसप्रकार आत्मा को स्वविषय बनाया, उसे बाहर के समस्त इंद्रिय-विषय नीरस प्रतीत होते हैं।

❀ चैतन्य के अमृतरस के समक्ष विषय तो विष समान प्रतीत होते हैं। सर्पादिक के विष की अपेक्षा विषयों का विष अधिक तीव्र और दुःखदायक है... अरे, चैतन्य के अमृत-रस का जिसने आस्वादन किया, उसे जगत का कोई भी विषय नहीं ललचा सकता, उसमें उसे कहीं सुख भासित नहीं होता है।

❀ आत्मरस का स्वाद जब तक नहीं चखा, तभी तक शुभ-अशुभ विषय अज्ञान से इष्ट प्रतीत होते हैं। ज्ञानी को अपना आत्मरस ही परम इष्ट लगा है, उसके सिवा दूसरा कोई उसे इष्ट नहीं है।

❀ हे भाई! आत्मानुभव के पूर्व भी अंतर में 'ज्ञान के विचार द्वारा' उसे खोज। ज्ञान द्वारा उसे खोजने के प्रयत्न द्वारा भी आत्मा का रस वृद्धिगत होता जावेगा और राग का रस छूटता जायेगा।—इसप्रकार अंतर में खोजने पर तुझे अवश्य राग से भिन्न आत्मा का अनुभव होगा।

❀ ज्ञानानंदस्वरूप चैतन्यमूर्ति आत्मा, कि जो विश्व में सबसे श्रेष्ठ ऐसा विश्वनाथ है, हे जीव! उसका तू विश्वास कर। अपने विश्वनाथ का विश्वास करने पर अंतर से किसी अपूर्व आनंद की अनुभूति सहित जो अतीन्द्रियज्ञान प्रगट होता है, वही ज्ञान मोक्ष का साधक है। विश्वनाथ के विश्वास बिना बाह्य ज्ञान चाहे जितना हो, परंतु वह मोक्ष की साधना में काम नहीं आता, इसलिये वह सब अज्ञान है।

❀ आत्म-अनुभवी संत जगत को जागृत करते हैं कि हे जीवो! संसार तो तुमने देखा—वह तो देख लिया—उसमें कुछ देखने जैसा नहीं है; परंतु अंतर में आनंदमय चैतन्यतत्त्व है, वह देखने जैसा है। एकत्व-विभक्त आत्मा जगत में महा सुंदर है, वह देखने योग्य है। जिसे देखने पर महान आनंद हो, ऐसा आत्मप्रभु तेरे अंतर में विराजमान है। वास्तव में देखने योग्य वस्तु तो तेरा आत्मा ही है। उसके पास जाकर-उसमें तन्मय होकर जब तक उसे तू नहीं देखता, और बाह्य पदार्थों का ही अवलोकन करता है, तब तक सम्यक्त्वादि सुख या मोक्ष का मार्ग हाथ नहीं आयेगा। अहा! अंतर में विराजमान चैतन्यप्रभु, उसमें तन्मय होकर उसे देखने पर अपूर्व आनंदमय मोक्षमार्ग प्राप्त होता है, और जगत के पदार्थों का आश्चर्य नहीं रहता।

❀ राग से भिन्न ज्ञान का स्वाद जिसे अनुभव में नहीं आता, उसे मोक्ष के हेतुरूप धर्म की खबर नहीं है; राग का वेदन तो दुःखरूप है, और उसका फल तो बाह्य सामग्री है, इसलिये जो शुभराग की इच्छा करते हैं—उसे अच्छा मानते हैं, वे जीव संसार-भोग की ही इच्छा करते हैं। मोक्ष तो ज्ञानमय है, उसकी आराधना ज्ञान द्वारा होती है; ऐसे ज्ञान का वेदन करना उसी का नाम उत्तम शील है, और वह शील मोक्ष का कारण है। ऐसा शील आत्मा को महान आनंददायक है; उसमें परसंग नहीं है, आत्मा अपने एकत्व में सुशोभित होता है।

❀ राग का वेदन तो कुशील है; उसमें परसंग है, और उसका फल दुःख है। अहा, चैतन्यस्वभाव के आश्रय से रागरहित मोक्षमार्ग सुशोभित है। ऐसे मोक्षमार्ग में आया हुआ जीव चैतन्यसन्मुख होकर, आनंद का वेदन करता हुआ मोक्ष की साधना करता है। अहा, वीर का मार्ग तो निर्वाणसुख देनेवाला है।

❀ हे जीव! अंतर्मुख होकर चैतन्यस्वरूप की अनुभूति करने पर तेरे आत्मा में सम्यक्त्व अतीन्द्रिय आनंद आदि अनंत गुणों की शांति का झरना प्रवाहित होगा। अनादिकाल का तेरा अकाल मिट जावेगा, और रत्नत्रय के हरियाले अंकुरों से तेरे आत्मा का उद्यान खिल उठेगा।

❀ अहा, ऐसा सुंदर चैतन्यतत्त्व अपने ही अंतर में विराजमान होने पर भी, जिसे वह दृष्टिगोचर नहीं होता, वह बाह्य में अन्य सब भले देखता हो, तथापि वह अंध है। भाई, जगत के असार बाह्य पदार्थों को तूने देखा परंतु सारभूत अपने आत्मतत्त्व को अंतर में नहीं देखा, तो ज्ञानी कहते हैं कि तू अंध है। अरे, दृष्टिवाले मनुष्य को कोई अंधा कहे, वह तो शर्म की बात है... उसीप्रकार तू ज्ञानचक्षुवाला आत्मा, स्वयं अपने को देखने में अंधा रहे-यह तो शर्म की बात है। अरे जीव! ज्ञान प्राप्त करके तू अपने आत्मा को अवश्य जान।

❀ अरे जीवो! राग के मार्ग में तुम्हें क्या आनंद आता है? राग के मार्ग में न जाओ... न जाओ! उस मार्ग में दुःख है; सुख तो अंतर के शुद्ध चैतन्यतत्त्व में है.. इस चैतन्यतत्त्व की ओर आओ... चैतन्यभाव में जो आनंद है, वैसा आनंद जगत में अन्यत्र कहीं नहीं है।

❀ धर्मात्मा जीव की जितनी परिणति राग से विरक्त हैं, उतना शील है, और वह मोक्ष का कारण है। नरकादि संयोगों के बीच पड़े हुए जीव को भी जो सम्यग्दर्शनादि भाव हैं, वे तो वीतराग हैं, उन वीतरागी भावों की शांति के समक्ष नरक का दुःख भी कम हो जाता है।

❀ सम्यग्दर्शन स्वयं अतीन्द्रिय भाव है; उसके फल में पूर्ण अतीन्द्रियज्ञान और सुखरूप मोक्षपद की प्राप्ति होती है। अतीन्द्रियभाव का प्रारंभ चौथे गुणस्थान से होता है।

❀ धर्मी जानता है कि—

मेरे चैतन्यस्वरूप आत्मा के शुद्ध द्रव्य, शुद्ध गुण और शुद्ध पर्याय—वह मेरा

स्व है। मैं अपने शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्याय में निवास करनेवाला हूँ, उसी का मैं स्वामी हूँ और वही मेरा स्व है। रागादि अशुद्धता में मैं तन्मय नहीं हूँ, उसका मैं स्वामी नहीं हूँ, वह मेरा स्व नहीं है। इसप्रकार धर्मी शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्याय में तन्मय अपना अनुभव करता है। उसकी अनुभूति में द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद नहीं है। ऐसी आत्म-अनुभूति, वह मोक्षमार्ग है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों का समावेश ऐसी अनुभूति में है।

❀ हे जीव, अनंतकाल से संसार की चार गतियों में भ्रमण करते हुए जैसा सुख तुझे कहीं प्राप्त नहीं हुआ, वैसा अद्भुत सुख चैतन्य की अनुभूति में तुझे प्रत्यक्ष वेदन में आयेगा, क्योंकि आत्मा अद्भुत सुख का निधान है।

❀ भाई, तू चैतन्यसत्ता है; जितनी चैतन्यपर्यायें हैं, उनसे भिन्न आत्मसत्ता नहीं है—एक ही सत्त्व है। पर्याय के भेद का विकल्प छूट जाने पर, पर्याय कहीं आत्मा से भिन्न नहीं हो जाती; अनुभूतिस्वरूप आत्मा में द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद मिटकर तीनों से अभेद ऐसा ज्ञायकस्वरूप प्रसिद्ध होता है। जिसमें भेदों का समावेश होने पर भी जो अभेदरूप से अनुभव में आता है, ऐसा अद्भुत अनेकांतस्वरूप मेरा तत्त्व है—इसप्रकार धर्मी जीव स्वतत्त्व को शुद्धदृष्टि में लेता है।

❀ उपसर्ग प्रतिकूल और अनुकूल दो प्रकार के होते हैं; जिसप्रकार प्रतिकूलता में ज्ञानी का ज्ञान आकुल-व्याकुल नहीं होता, उसीप्रकार अनुकूलता में वह लुभाता-ललचाता नहीं है। इसप्रकार ज्ञानी का ज्ञान अनुकूलता या प्रतिकूलता में अपने स्वध्येय का आश्रय करता है और उसी में बुद्धि को प्रेरित करता है, वही परम धीरता है... स्व-ध्येय की ओर बुद्धि को लगाना ही सच्चा धैर्य है। किसी भी अवसर पर ज्ञानी की बुद्धि स्व-ध्येय से चलायमान नहीं होती, ऐसे धीर ज्ञानी मोक्ष की साधना करते हैं।

❀ अहा, जिनमार्गी संत तो रत्नत्रय के खिले हुए आनंदमय पुष्पों से सुशोभित हैं, ओर जगत का उपकार करते हैं। जिसप्रकार वृक्ष स्वयं पत्र-पुष्पों से पल्लवित शोभा देता है, और अपनी शीतल छाया में आये हुए जीवों को भी छाया देकर परोपकार करता है; उसीप्रकार चैतन्यसाधक मुनि तो धर्म का मधुर वृक्ष है, वे स्वयं तो आनंदमय रत्नत्रय पुष्पों द्वारा पल्लवित होकर शोभायमान होते हैं, तथा अपनी वीतरागी छाया में

आनेवाले भव्य जीवों को भी शांति का मार्ग बतलाकर परोपकार करते हैं। धन्ह हैं वे मुनिराज!

जिसप्रकार वृक्ष किसी भी भेदभाव के बिना सबको शीतल छाया प्रदान करता है; पापी हो या धर्मी—सबको राग-द्वेष के बिना वह छाया ही देता है, उसीप्रकार ज्ञानी-संत निस्पृहरूप से समस्त जीवों को वीतरागी शांति का ही निमित्त होते हैं, सबको चैतन्य के हित का मार्ग बतलाते हैं।

❀ आत्मा ज्ञानस्वभावी है; उसमें राग को उत्पन्न करने का स्वभाव नहीं है; ज्ञानपर्याय को उत्पन्न करे, ऐसा उसके स्वभाव का सामर्थ्य है। आत्मा ज्ञानपर्याय से अभिन्नरूप परिणमित होता है। स्वपर्यायों से भिन्न चैतन्यसत्ता नहीं है, परंतु एकरस है। ज्ञानपर्याय होने का आत्मा का स्वभाव है, वह कहीं उपाधि नहीं है, परंतु वह तो अपना स्वाभाविक सामर्थ्य है।

❀ चेतनरूप से विद्यमान जो ज्ञायकभाव है, उसका ज्ञानरूप परिणमित होने का स्वभाव है; वह जितनी ज्ञानपर्यायोंरूप परिणमित होता है, वे समस्त पर्यायें अभेद में तन्मय होकर एक अभेद का अभिनंदन करती हैं; ऐसे निर्विकल्प ज्ञानस्वरूप से धर्मी अपना अनुभव करता है। ज्ञानपर्यायें असत् नहीं हैं, परंतु उनके भेद के विकल्प करना, वह वस्तुस्वरूप में असत् है। राग-विकल्प वह वस्तु का स्वरूप नहीं है।

❀ शुद्ध ज्ञान के अनुभवनशील आत्मा अनाकुलतारूप परम सुख का आस्वादन करता है, वह विकल्प के स्वाद को अपने में नहीं मिलाता, शांतरस का स्वाद लेनेवाला ज्ञान विकल्प का स्वाद लेने में असमर्थ है; विकल्प का बोझ ज्ञान को असह्य है। चैतन्य के सुखरस का जिसने स्वाद चखा है और उसी में जो तन्मय हुआ है, उस ज्ञान में दु:खरूप विकल्पों का स्वाद कैसे रह सकता है? इंद्रिय-विषयों के दु:ख का वेदन वह ज्ञान क्यों करेगा? अज्ञानीजनों को जिस राग और विषयों में सुख प्रतीत होता है, ज्ञानी को वे सब दु:खरूप लगते हैं, और ज्ञानमय शुद्धस्वरूप में तद्रूप परिणमित होता हुआ वह सुख -स्वाद का ही वेदन करता है। अहा, ऐसे सुख की महिमा ज्ञानी को ही गोचर है।

❀ जीवद्रव्यरूपी महासमुद्र अपनी ज्ञान-कल्लोलोंरूपी स्वबल से ही परिणमित हो रहा

है, इसलिये वह तो स्वभाव ही है, वह कहीं राग-द्वेष की भाँति उपाधि नहीं है। जितनी ज्ञानपर्यायें हैं, उनसे भिन्न सत्ता नहीं है, एक ही सत्त्व है। सत्तास्वरूप ज्ञायकभाव एक है, तथापि अंशभेद करने पर अनेक है। ऐसे आत्मा के अनुभव का जो महान सुख है, वैसा सुख अन्यत्र कहीं नहीं है। जीव ने अनंतकाल से चारों गतियों में भ्रमण करते हुए जैसा सुख कहीं प्राप्त नहीं किया, ऐसे अद्‌भुत सुख का निधान आत्मा है, और धर्मी को उस सुख की अनुभूति हो चुकी है।

❀ कोई कहे कि एक ज्ञान के पाँच प्रकार क्यों हैं ? तो कहते हैं कि ज्ञानपर्याय वह वस्तु का सहज स्वरूप है, वे ज्ञानपर्यायें कहीं वस्तु से विरुद्ध तो हैं नहीं; विकल्प झूठे हैं और ज्ञान से विरुद्ध हैं, परंतु ज्ञानपर्यायें कहीं विरुद्ध या झूठी नहीं हैं; आत्मा ज्ञानमात्र है, उसकी संवेदन व्यक्तियाँ अत्यंत निर्मल हैं।

❀ कोई ऐसा माने कि जितनी ज्ञान की पर्यायें हैं, वे सब अशुद्ध हैं परंतु ऐसा नहीं है, क्योंकि जिसप्रकार ज्ञान शुद्ध है, उसीप्रकार ज्ञान की पर्यायें वस्तु का स्वरूप है, इसलिये शुद्धस्वरूप हैं।

❀ विशेष इतना समझना कि, मात्र पर्यायभेद को लेने से विकल्प उत्पन्न होते हैं, ज्ञान का अनुभव निर्विकल्प है, इसलिये वस्तुमात्र का अनुभव करने पर समस्त पर्यायें भी ज्ञान मात्र हैं।—ऐसा ज्ञानमात्र आत्मा अनुभवयोग्य है। उसकी श्रद्धा, उसका ज्ञान, उसका आचरण वह मोक्षमार्ग है। ऐसी आत्मअनुभूति वह आनंद देनेवाली दिव्य औषधि है, उसके सेवन से आत्मा के सर्व प्रदेशों में आनंद की वृद्धि होती है।

धर्मात्मा का प्रमाणज्ञान द्रव्य-गुण-पर्यायरूप यथार्थ वस्तुस्वरूप को जानता है; जिसके द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों शुद्ध चेतनमय हैं, ऐसे आत्मा का स्वरूप जानने पर प्रमाणज्ञान हुआ अर्थात् भेदज्ञान और सम्यग्ज्ञान हुआ। सम्यग्ज्ञान ने आत्मा का जैसा स्वरूप जाना, वैसी ही आत्मा की निःशंक श्रद्धा की, वह सम्यग्दर्शन हुआ। सम्यग्ज्ञान (-प्रमाण ज्ञान) के साथ ही सम्यग्दर्शन नियम से होता है; इसप्रकार सम्यग्ज्ञान के जाने हुए आत्मतत्त्व का श्रद्धान ही सम्यग्दर्शन है। सम्यग्ज्ञान ने जिस वस्तुस्वरूप को जाना, उससे विरुद्ध श्रद्धा नहीं होती। इसलिये जाने हुए का श्रद्धान ही सम्यग्दर्शन है; जाने

बिना श्रद्धा किसकी ? ज्ञानरहित श्रद्धा को तो 'खरगोश के सींग' की भाँति असत् श्रद्धा कही है, अर्थात् ऐसी श्रद्धा मिथ्या है। इसलिये यथार्थ ज्ञान से वस्तुस्वरूप जानकर उसकी श्रद्धा करना चाहिए।

❀ चेतनमय शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्यायरूप जैसा आत्मस्वरूप है, वैसे आत्मा का ज्ञान वह सम्यग्ज्ञान है, उसका श्रद्धान, वह सम्यग्दर्शन है, और उसमें एकाग्रतारूप वीतराग-परिणति, वह सम्यक्चारित्र है।—इसप्रकार आत्मा के ही आश्रय से मोक्षमार्ग है।

ज्ञानगोष्ठी

- वा - व - वा - वा - व - व - व - वा - वा - व - व

उपरोक्त शब्दों में जो ११ रिक्तस्थान (-) हैं, उन स्थानों में एक अक्षर रखने से आत्मा की सात शक्तियाँ प्राप्त होगीं। वह अक्षर है 'भा' - सब रिक्त स्थानों पर 'भा' रखने से निम्नानुसार पंक्ति बनती है—

भावाभावभावाभावाभावभावभावभावाभावाभावभाव

अब, योग्य प्रकार से संधि-विच्छेद करने पर सात शक्तियों के नाम इसप्रकार बनते हैं—

भाव, अभाव, भावाभाव, अभावभाव, भावभाव, अभावअभाव, भाव

समयसार में आत्मा की जिन ४७ शक्तियों का वर्णन है, उनमें नं. ३२ से ३९ तक उपरोक्त सात शक्तियों का वर्णन है; उनकी व्याख्या समयसार में से देख लें।

श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु महामंडल, सोनगढ़

[मीटिंगों की सूचना]

इस वर्ष श्री जैन अतिथि सेवा समिति तथा अपने महामंडाल की कार्यकारिणी समिति की मीटिंग तथा जनरल मीटिंग सोनगढ़ में निम्नानुसार तिथियों में रखी गई है। आप अपने नगर के प्रतिनिधि को इन मीटिंगों में भाग लेने हेतु अवश्य सूचित करें।

—: एजन्डा :—

(१) सन् १९७३-७४ के वर्ष का वार्षिक हिसाब, कमेटियों का हिसाब एवं रिपोर्ट स्वीकृत करने हेतु।

(२) सन् १९७४-७५ के वर्ष का नया बजट स्वीकृत करने हेतु।

(३) माननीय अध्यक्ष महोदय की स्वीकृति से अन्य जो भी विषय रखा जाये इस हेतु।

	दिनांक	वार	समय
श्री जैन अतिथि सेवा समिति	१६-९-७४	सोमवार	सबेरे ९।से ९।।। बजे
श्री कार्यकारिणी समिति मीटिंग	१६-९-७४	सोमवार	सबेरे ९।।। बजे
श्री जनरल मीटिंग	१७-९-७४	मंगलवार	सवेरे ९। बजे
श्री ट्रस्टी-मंडल की मीटिंग	१७-९-७४	मंगलवार	शाम ४। बजे

तदुपरांत श्री जैन विद्यार्थी गृह, सोनगढ़ की वार्षिक मीटिंगें निम्नानुसार रखी गई हैं:—

(१) ट्रस्टी मंडल एवं व्यवस्थापक मीटिंग १६-९-७४, सोमवार, शाम ४। बजे

(२) जनरल मीटिंग १७-९-७४, मंगलवार, सबेरे ९।।। बजे

उपरोक्त सभी मीटिंगें श्री कुन्दकुन्द प्रवचन-मंडप में होंगी।

प्रेषक :—

नेमीदास खुशाल सेठ
ट्रस्टी
श्री जैन विद्यार्थीगृह, सोनगढ़

नवनीतलाल चुन्नीलाल जवेरी
अध्यक्ष
श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु महामंडल, सोनगढ़

पंच परमेष्ठी भगवंतों को आत्मा में बुलाकर शुद्धोपयोग की धुन जगानेवाला अपूर्व मंगलाचरण

[वीर सं. २५००, श्रावण शुक्ला १०]

प्रवचनसार की मंगल गाथाएँ आज प्रारंभ होती हैं। उसके उपोद्घात में अमृतचंद्राचार्यदेव श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव की पहिचान कराते हैं

अहा, इन सूत्रकर्ता आचार्य परमदेव को संसार-समुद्र का किनारा समीप आ गया है... मोक्षदशा बिल्कुल निकट आ गई है, इसलिये वे आसन्न भव्य हैं। हजारों वर्ष पूर्व हुए आचार्यदेव की अंतरंग-अनुभवदशा को अपनी स्वानुभूतिसहित पहिचानकर कहते हैं कि अहा, ऐसे अलौकिक आत्मवैभववाले वीतरागी संत का यह कथन है।

वे कुन्दकुन्दाचार्यदेव सातिशय भेदज्ञानज्योतिवान हैं। जैसे सातिशय सातवें गुणस्थानवाला श्रेणी चढ़ता है, उसीप्रकार आचार्यदेव की भेदज्ञानज्योति ऐसी अतिशयवान है कि केवलज्ञान प्राप्त करेगी—अप्रतिहतरूप से आगे बढ़कर केवलज्ञान प्रगट करेगी।

— भेदज्ञान की अनेकांत विद्या द्वारा, मिथ्यारूप एकांत विद्या का आग्रह जिन्हें अस्त हो गया है। अहा, अनेकांत का अमोघ मंत्र समस्त अविद्या का नाश कर देता है। आचार्यदेव को अनेकांतरूप महान वीतरागी विद्या प्रगट हो गयी है, वह तो जिनेश्वरी-विद्या है। ऐसी पारमेश्वरी विद्या के अतिरिक्त शुद्धोपयोग के बल से राग-द्वेष का अभाव करके ऐसे मध्यस्थ हुए हैं कि कहीं पक्षपात नहीं है। किसी को संतुष्ट करने या किसी की निंदा करने में उनकी प्रवृत्ति नहीं रही, वीतरागभाव से मोक्षसाधना के हेतु शुद्धोपयोगी चारित्र में जिनकी प्रवृत्ति है, बीच में अल्प राग आता है, उसे लाँघ जाना चाहते हैं।

मोक्षलक्ष्मी को ही आचार्यदेव ने उपादेयरूप से निश्चित किया है। सर्व पुरुषार्थ सारभूत ऐसी मोक्षदशा ही आत्मा को सर्वथा हितरूप है; और पंच परमेष्ठी के प्रसाद से वह उत्पन्न होती है; वही अविनाशी है और उपादेय है।

हे पंच परमेष्ठी भगवंत! आपके मार्ग का अनुसरण करने से मोक्षलक्ष्मी प्रगट होती है।

श्रीगुरुओं ने प्रसन्न होकर अनुग्रहपूर्वक शुद्धात्मतत्त्व का उपदेश हमें प्रसादरूप में दिया है, जिससे हमें निजवैभव प्रगट हुआ है,—ऐसा समयसार की पाँचवीं गाथा में कहा है; यहाँ पंच परमेष्ठी के प्रसाद से मोक्ष होने की बात कही है; इसलिये उन्होंने जैसा कहा, वैसा भाव लक्ष में लेने पर आत्मा का अनुभव होकर परम आनंदसहित मोक्ष का द्वार खुल जाता है।—ऐसी दशारूप परिणमित प्रभु कुन्दकुन्दस्वामी अनुग्रहपूर्वक यह प्रवचनसार सुनाते हैं... मोक्ष का मंगल-मंडप रोपते हैं और उसमें पंचपरमेष्ठी को बुलाते हैं।

अहा, ऐसे समर्थ आचार्य भगवान जिन-प्रवचन के सारभूत यह परमागम सुनाते हैं, तो हे भव्य जीवो! तुम परमानंद के पिपासु होकर प्रशमभावना के लक्षपूर्वक अत्यंत बहुमान से उसका श्रवण करना। उसके फल में मोह का नाश होकर तुम्हें परम अतीन्द्रिय आनंद की अनुभूति होगी।

पांचवीं गाथा में कहा है कि—अपने आत्मवैभव से मैं जो शुद्ध एकत्व-विभक्त आत्मा बतलाता हूँ, उसे हे भव्य जीवो! तुम अपने स्वानुभव से प्रमाण करना। हमारी निजवैभव की बात सुनकर उसके भाव को समझन से अवश्य शुद्ध आत्मा अनुभव में आयेगा।

जिसने ऐसा अनुभव किया, वह कहता है कि हे प्रभु! आपके प्रसाद से मुझे शुद्धात्मा की प्राप्ति हुई... मुझ पर आपकी कृपा हुई... आप मुझ पर प्रसन्न हुए। आपके प्रसाद से शुद्धात्मा के श्रद्धा-ज्ञानपूर्वक हमने परमहितरूप मोक्षलक्ष्मी को उपादेय किया है।

देखो, ऐसी शुद्धदशारूप परिणमित आचार्यदेव मोक्षसाधना के महान आनंद-अवसर पर, श्री वर्द्धमानदेव सहित पंच परमेष्ठी भगवंतों को नमस्कारपूर्वक भाते हैं, उनका आदर करते हैं, और सर्व उद्यमपूर्वक स्वयं भी मोक्षमार्गरूप परिणमित होते हैं... मोक्षमार्गरूप परिणमित होकर मोक्ष को साधते-साधते आचार्यदेव ने यह रचना की है। वे १९९वीं गाथा में कहते हैं कि हमने मोक्षमार्ग का अवधारण किया है और कृत्य कर रहे हैं। मोक्षसाधना का कार्य चल ही रहा है। हमारे आत्मा ने मोक्षमार्ग का आश्रय किया है... और उसमें भी शुद्धोपयोग का अंगीकार करते हैं।

यह बात पाँच रत्नों के समान पाँच मंगल गाथाओं द्वारा कहते हैं

卐 सूत्र १ - २ - ३ - ४ - ५ 卐

इन पाँच मंगल गाथाओं द्वारा पंच परमेष्ठी भगवंतों को आत्मा में बुलाकर, आराधक भाव की धुन जगाता हुआ अपूर्व मंगलाचरण किया है।

अहा, कुन्दकुन्दाचार्य जैसे महान संत जिन्हें नमस्कार करते हैं, वे साधु कैसे होंगे? वे पंच परमेष्ठी भगवंत कैसे होंगे? उनकी महिमा की क्या बात! पाँच गाथाओं में पंच परमेष्ठी भगवंतों को ज्ञान में उपस्थित करके चैतन्यरत्नों की वर्षा की है... आत्मा में शुद्धोपयोग की धारा उल्लसित की है।

नमस्कार करते हुए मैं नमस्कार करनेवाला कैसा हूँ?—कि मैं ज्ञान-दर्शनस्वरूप स्वसंवेदनप्रत्यक्ष हूँ। अपने आत्मा के स्वसंवेदनप्रत्यक्षपूर्वक मैं पंच परमेष्ठी भगवंतों के शुद्धात्मा को नमस्कार करता हूँ। उनके आश्रय में प्रथम तो विशुद्ध सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान प्राप्त किया है, चारित्रदशा भी प्रगट की है, और अब चारित्रदशा में मैं शुद्धोपयोगरूप साम्यदशा को प्राप्त करता हूँ।—देखो तो सही, आचार्यदेव की वीतरागी भावना! शुद्धोपयोगपूर्वक चारित्रदशा तो प्रगट हुई है, और शुद्धोपयोग में एकदम स्थित होना चाहते हैं... कि जिससे साक्षात् निर्वाण की प्राप्ति होती है।

अपने ज्ञान-दर्शनस्वरूप आत्मा को स्वसंवेदनप्रत्यक्ष करके ही पंच परमेष्ठी भगवंतों को सच्चा नमस्कार होता है।

ज्ञानस्वरूप आत्मा को जिसने स्वसंवेदन में प्रत्यक्ष किया, उसने रागादिभावों को चैतन्य से भिन्न जाना है। स्वसंवेदन में प्रत्यक्ष हो, ऐसा आत्मा का स्वभाव है। राग में या इंद्रियज्ञान में आये, ऐसा वह स्वभव नहीं है। इसप्रकार अतीन्द्रिय स्वभावरूप होकर, उसके अनुभवपूर्वक भगवंत पंच परमेष्ठी को नमस्कार किया है, उसमें बड़ी गंभीरता है। पंच परमेष्ठी को नमस्कार करते हुए अपने स्वसंवेदन की बात साथ ली है।

प्रथम सूत्र का ही 'एष' शब्द से प्रारंभ किया है, 'एष' अर्थात् 'स्वसंवेदनप्रत्यक्ष दर्शनज्ञानसामान्यात्माहं'—ऐसा कहकर आत्मा के स्वसंवेदनप्रत्यक्षपूर्वक आचार्य भगवान ने इस परमागम का प्रारंभ किया है। नमस्कार करनेवाले ने स्वयं अपने को पहिचानकर पंच

परमेष्ठी भगवंतों को नमस्कार किया है, अर्थात् स्वयं उनकी पंक्ति में सम्मिलित होकर उन्हें नमस्कार किया है।

पंच परमेष्ठी में सर्वप्रथम वर्तमान तीर्थ के नायक ऐसे भगवान वर्द्धमानदेव को नमस्कार किया है। हे भगवान! आपका शासन कैसा है कि जिसमें धर्म की वृद्धि ही होती है। आपका मंगल शासन आज भी वर्त रहा है। धर्म की वृद्धि करनेवाले ऐसे आप 'वर्द्धमान' हो।

देखो तो सही, वर्द्धमान नाम भी कैसा सुंदर है! हे वर्द्धमानदेव! वर्तमान में आपका धर्मशासन वर्त रहा है; अर्थात् आपके द्वारा उपदेशित शुद्धज्ञान-दर्शन के भाव इस समय हमारे आत्मा में वर्त रहे हैं, वही आपका शासन है।

जो भूतकाल में तीर्थंकर हुए, वे आज सिद्धरूप में विराजमान हैं। अनंत सिद्ध भगवंत हैं वे सब, शरीरादि से रहित होने पर भी, चैतन्य की विशुद्ध सत्तारूप सद्भाववाले हैं। द्रव्य-गुण-पर्याय से-सर्वप्रकार से विशुद्ध जिनका सद्भाव है, चैतन्य की अनंत शुद्ध सत्तारूप जिनका जीवन है, ऐसे सिद्धभगवंतों को ज्ञान में लेकर मैं नमन करता हूँ।

अहा, कुन्दकुन्दाचार्यदेव जैसे महात्मा भी जिन्हें नमन करते हैं, उस पंच परमेष्ठी पद की महिमा का क्या कहना! वंदन करनेवाले इतने महान हैं, तो जिन्हें वंदन करते हैं, उनकी शुद्धता की क्या बात!

अरहंत, तीर्थंकर और सिद्ध भगवंतों के साथ आचार्य-उपाध्याय-साधु भगवंतों को भी मैं नमन करता हूँ—कैसे हैं वे श्रमण भगवंत?—जिन्होंने परम शुद्धोपयोग भूमिका को प्राप्त किया है। उपयोगभूमिका में पुण्य-पाप और राग नहीं आता। शुद्ध उपयोग परिणति द्वारा ही सम्यग्दर्शन और धर्म का प्रारंभ होता है। उस उपयोग की शुद्धता जिन्हें विशेष बढ़ गई है—ऐसे श्रमण भगवंतों को मैं नमन करता हूँ। देखो, मुनि की पहिचान शुद्ध उपयोग द्वारा करायी है। अरे, ऐसी मुनिदशा की पहिचान भी वर्तमान में कैसी दुर्लभ हो गई है!

अपने ज्ञान में जहाँ सर्वज्ञ-वीतराग-अरहंत परमात्मा के स्वरूप का निर्णय किया, वहाँ पूर्वकाल में हुए समस्त अरहंत भगवंत भी आ जाते हैं... इसप्रकार समस्त भगवंत अपने ज्ञान में वर्तमानकालगोचर हो जाते हैं।

अहो, मानों सब पंच परमेष्ठी भगवंत मिलकर एक साथ हमारे घर-हमारे ज्ञान-मंदिर में पधारे हैं!—इसप्रकार साधक के आत्मा में आनंद का महोत्सव प्रारंभ हुआ है। अहा, मेरे आत्मा में मोक्ष का अपूर्व मंगल-महोत्सव, उसमें मैंने पंच परमेष्ठी भगवंतों को बुलाया है, और पंच परमेष्ठी भगवंत मेरे मंडप में पधारे हैं; अनंत सिद्ध भगवंत, लाखों अरिहंत भगवंत, करोड़ों मुनिभगवंत—यह सब एकसाथ मेरे निर्ग्रंथ दीक्षा के आनंद-उत्सव में पधारे हैं, आनंद मेले में वे सब पधारे हैं, उन सबका मैं सम्मान करता हूँ.... नमन करता हूँ... आराधन करता हूँ।

***

अहा, अपना आत्मा तो हमें प्रत्यक्ष है, और पंच परमेष्ठी भगवंत भी हमारे ज्ञान में साक्षात् वर्तते हैं, उनका हमें विरह नहीं है। यद्यपि आजकल इस भरतक्षेत्र में तीर्थंकर की उत्पत्ति नहीं दिखती, परंतु मनुष्यक्षेत्र तो बहुत विशाल है, इस मनुष्यक्षेत्र के ही विदेहक्षेत्र में वर्तमान में भी सर्वज्ञता सहित अरिहंत भगवंत साक्षात् विचर रहे हैं, वे हमारे ज्ञान में विद्यमान वर्तमान वर्त रहे हैं, इसलिये अपने ज्ञान में उनको प्रत्यक्षगोचर करके उन्हें नमस्कार करता हूँ। जिसप्रकार सिद्धभगवंत असंख्यात योजन दूर क्षेत्र में विराजमान होने पर भी, साधक धर्मात्मा के ज्ञान में वे दूर नहीं हैं, साधक के ज्ञान में सिद्ध भगवंत विद्यमान ही वर्त रहे हैं। इसलिये उनके तो सिद्ध का सद्भाव ही है; उसीप्रकार अतीन्द्रिय ज्ञान-आनंदरूप हुए अरिहंत भगवंत भी साधक के ज्ञान में विद्यमान ही वर्तते हैं; क्षेत्र का अंतर ज्ञान में रुकावट नहीं डालता। वाह, देखो तो! राग से भिन्न हुए साधक के अतीन्द्रिय ज्ञान का सामर्थ्य कितना महान है!

आराधक भावसहित पंच परमेष्ठी भगवंतों को नमस्कार चल रहा है। शुद्धात्मभावरूप सहित पंच परमेष्ठी वे भाव्य, और मैं उस शुद्धात्मा का भावक—ऐसा भाव्य-भावक का स्वरूप चिंतन करके, भाव्यरूप शुद्धात्मा के प्रति जहाँ अतिगाढ़ भावना जागृत होती है, वहाँ भावक स्वयं वैसी शुद्धात्मदशारूप हो जाता है, जैसे 'भाव्य' शुद्ध हैं, वैसी शुद्धतारूप (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप) भावक स्वयं हो जाता है, इसलिये वहाँ भाव्य और भावक का द्वैत नहीं रहता।—ऐसे अद्वैतभावरूप नमस्कार करके मैं पंच परमेष्ठी के आश्रम में प्रवेश करता हूँ... पंच परमेष्ठी का आश्रम अर्थात् शुद्धात्मा का आश्रम,—उसमें प्रवेश करने से सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान अवश्य होते हैं। जिसप्रकार किसी आश्रम में पहुँचकर जीव शांति प्राप्त करते हैं,

उसीप्रकार पंच परमेष्ठी का वीतरागी-आश्रम, आत्मा का सहज शुद्ध दर्शन-ज्ञानस्वभाव बतलाकर जीव को सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का संपादक है। ज्ञानस्वभावी आत्मा के श्रद्धा-ज्ञान द्वारा ही पंच परमेष्ठी के आश्रम में प्रवेश होता है। शुद्ध आत्मा के सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के बिना पंच परमेष्ठी की भी सच्ची पहिचान नहीं होती। जो ज्ञानस्वरूप शुद्धात्मा को स्वसंवेदन-प्रत्यक्ष करता है, वही सच्चा णमो अरिहंताणं कर सकता है।

श्री षट्खंडागम के महान मंगलाचरण में 'णमो लोए त्रिकालवर्ती सव्व अरिहंताणं' ऐसा कहकर त्रिकालवर्ती परमेष्ठी भगवंतों को ज्ञान में लेकर नमस्कार किया है, उसमें बहुत गंभीरता है। जिसके ज्ञान में त्रिकालवर्ती अरिहंतों का स्वीकार हुआ, उसका ज्ञान, राग से भिन्न होकर अरिहंत पद का साधक हो गया; इसलिये 'णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं' उसमें अपना आत्मा भी आ गया, स्वयं अपने को नमस्कार किया... अर्थात् स्वयं अपने आत्मा को स्वसंवेदनप्रत्यक्ष करके उसमें नमा... एकाग्र हुआ, वह अभेद नमस्कार है।

अहा, सच्चे नमस्कार का विषय भी कितना बड़ा है! सम्यग्दर्शन के विश्वास का विषय तो सर्वोत्कृष्ट महान सुंदर चैतन्यतत्त्व है, और त्रिकालवर्ती पंच परमेष्ठी भगवंतों को नमस्कार करने में भी अपने आत्मा को साथ लेकर बहुत गंभीरता है; अनंत जीव मुक्त हुए हैं और भविष्य में मैं भी मुक्त होनेवाला हूँ; इसलिये अनंत जीव हैं, मैं भी त्रिकाल हूँ, मेरे स्वभाव में भी अरहंत जैसे सर्व गुण विद्यमान हैं, और उस स्वभाव की स्वीकृति द्वारा, उसकी सन्मुखता से, मोह का अभाव करके सम्यक्त्वादि द्वारा मैं मोक्ष को साध रहा हूँ, इसलिये मैं अपने शुद्धआत्मा को नमन कर रहा हूँ।—इतने अटल विश्वासपूर्वक पंच परमेष्ठी को सच्चा नमस्कार होता है। देखो, एक 'णमो अरिहंताणं' में कितनी गंभीरता है।

धन्य है जैनदर्शन!... तेरे रहस्य बहुत गंभीर हैं!

केवल राग द्वारा अरहंतों को सच्चा नमस्कार नहीं होता। राग से पृथक् हुए अतीन्द्रिय ज्ञान में ही, अतीन्द्रिय ज्ञानानंदस्वरूप अरहंतों का स्वीकार हो सकता है, और ऐसा स्वीकार करे, तभी सच्चा 'णमो अरिहंताणं' होता है। ऐसे भाव से जिसने अरहंतों को नमस्कार किया, वह जीव भी अल्प समय में अरहंतों की पंक्ति में बैठ जाता है।

वाह! अरहंतों का मार्ग कैसा अलौकिक, कैसा सुंदर है!

अरे, महावीर का मार्ग... यह तो वीरों का वीतराग मार्ग है। कहीं राग या कषाय द्वारा उस मार्ग पर पहुँच सकते हैं ?—नहीं, कषाय का कोई भी कण हो, वह दु:ख का कारण है; उस कषाय को लाँघकर, उसके अभाव से शुद्ध वीतरागचारित्र की प्राप्ति होती है। छठवें गुणस्थान का (संज्वलनरूप) कषायकण, वह भी चारित्र का विरोधी है। क्लेशरूप कलंक से रहित है—वही परम समभावरूप है। कुन्दकुन्दस्वामी कहते हैं कि मोक्ष के लिये मैंने ऐसे वीतरागचारित्र का अवलंगन किया है।

हे वीतरागी संतो! धन्य है आपकी दशा! आप चैतन्य की वीतरागी शांति की शीतलता में स्थिर हो गये हैं। उसमें कषाय-अग्नि का कण भी नहीं रह सकता। नमस्कार हो ऐसे वीतरागी संत भगवंतों को!

अमृतचंद्रदेव कहते हैं कि 'इन्होंने—मेरे गुरु ने इसप्रकार साक्षात् मोक्षमार्ग अंगीकार किया है'—ऐसा सुनकर मुमुक्षु श्रोताओं को ऐसा प्रमोद आता है कि वाह, हमारे गुरु कितने महान हैं! उनकी अंतरस्थिति कैसे वीतरागभाव से सुशोभित हो रही है! ऐसे महान गुरु हमें मिले... हम भी उनके मार्ग का अनुसरण करके मोक्षमार्ग को अंगीकार कर रहे हैं। वाह! मोक्ष के मार्ग में गुरु-शिष्य के भावों की कैसी अपूर्व संधि है!

पाठकों से बातचीत और तत्त्वचर्चा

[सर्व जिज्ञासुओं का प्रिय विभाग]

❀ जगत में एक प्राणी ऐसा है, जिसे बाँध रखने से वह जगह-जगह फिरता है; परंतु यदि उसे छोड़ दें तो वह कहीं एक डग भी नहीं चलेगा!

— वह प्राणी है जीव। जीवतत्त्व ऐसा है कि बंधन में होता है, तब वह चारों गतियों में परिभ्रमण करता है, परंतु यदि वह स्वतंत्र हो अर्थात् मुक्त हो तो सदा के लिये सिद्धालय में स्थित रहता है, फिर उसे कहीं गमनागमन नहीं होता।

❀ जगत में सर्वत्र भगवान अधिक हैं ? या सर्वज्ञ भगवान के भक्त अधिक हैं ?

— जगत में सर्वज्ञ भगवंत (सिद्ध भगवंत) अनंत हैं; उन सर्वज्ञ के भक्त अर्थात् साधक जीव तो असंख्यात ही हैं। इसप्रकार भक्त कम और भगवान अधिक हैं।

❀ मध्यलोक में असंख्या द्वीप-समुद्र हैं, उसमें सबसे बड़ा स्वयंभूरमण-समुद्र है; उस स्वयंभूरमण समुद्र के प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यातगुने प्रदेशोंवाला प्रत्येक जीव है।

समस्त लोक के प्रदेशों जितने ही एक-एक जीव के प्रदेश हैं; और वे असंख्यात प्रदेश सम संख्या में हैं।

जीव के प्रदेश सम संख्या में क्यों हैं ? उसका स्पष्टीकरण—

जिस वस्तु का, या जिस संख्या का बराबर मध्यभाग सम हो, उस वस्तु के समस्त प्रदेश भी सम संख्या में ही होते हैं; और जिस वस्तु का बराबर मध्य भाग विषम हो, उस वस्तु के समस्त प्रदेश भी विषम संख्या में ही होते हैं। अब, जीव जब केवलिसमुद्घात करता है, तब वह लोकव्यापी होता है, और लोक के प्रत्येक प्रदेश में जीव का एक-एक प्रदेश रहता है; तब लोक के ठीक मध्य के जो आठ प्रदेश (-कि जिनका स्थान मेरुपर्वत के नीचे है, वे आठ मध्य प्रदेश) उनमें जीव के आठ प्रदेश रहते हैं, जिन्हें 'रुचकप्रदेश' कहा जाता है। इसप्रकार जिसके मध्यप्रदेश आठ हैं, ऐसे जीव के असंख्य प्रदेश सम संख्या में ही हैं।

— असंख्य को या अनंत को भी सम या विषम कह सकते हैं ?

— हाँ; असंख्य में या अनंत में भी विषम या सम का व्यवहार संभवित है जैसे कि (गिनती से स्पष्ट समझने के लिये)—

एक समान दो असंख्य लो; उनमें से पहले में (असंख्य + १) और दूसरे में दो मिलाओ (असंख्य + २); तो उन दोनों असंख्य में से एक विषम होगा और दूसरा सम। षट्खंडागम में भी कर्मप्रदेशों की संख्या में विषम-सम (ओज-युग्म) का वर्णन आता है।

❀ ज्ञान की महानता ❀

❀ अहा, चैतन्य-महातत्त्व को जिसने साक्षात् पकड़ा, उस क्षयोपशमज्ञान को अल्प कैसे कहें ? महान अतीन्द्रिय स्वसंवेदनरूप से विकसित ज्ञान महान है। इंद्रियों या राग द्वारा

जिसके सामर्थ्य का माप नहीं हो सकता – ऐसी महान गंभीर शक्ति ज्ञान में है। राग से जो पृथक् हुआ, उस ज्ञान की शक्ति का क्या कहना!

❀ शुद्धतारूप परिणमित आत्मा शुद्ध है ❀

❀ स्वभाव से सभी आत्मा ज्ञायक शुद्ध हैं... परंतु उसके सन्मुख होकर जिसने अनुभव में लिया, उसे वह शुद्ध परिणमित हुआ है। राग से भिन्न होकर, और ज्ञायकस्वभाव में अभिन्न रहकर जिसने एकत्व-विभक्त आत्मा की उपासना की, उसी को वह शुद्धरूप से अनुभव में आया है। अपने को स्वानुभूति हुए बिना 'मेरा आत्मा शुद्ध है' ऐसा किसप्रकार जाना जा सकता है? इसलिये शुद्धरूप परिणमित आत्मा ही अनन्यरूप से अपने को शुद्ध अनुभव करता है।—ऐसी अनुभूति वही सम्यक्त्व है।

❀ सम्यग्दृष्टि का स्वसंवेदनज्ञान सिद्ध के समान ❀

❀ 'पंचाध्यायी' में दूसरे अध्याय के ४८९वें श्लोक में कहा है कि—'सम्यग्दृष्टि जीव के आत्मा को जाननेवाला स्वसंवेदनप्रत्यक्ष नाम का ज्ञान होता है जो सिद्धों के समान शुद्ध होता है'।

—अहा, आत्मा को जाननेवाला सम्यग्दृष्टि का स्वसंवेदनप्रत्यक्ष ज्ञान सिद्धभगवान के समान शुद्ध है! सिद्ध का ज्ञान और साधक का ज्ञान एक ही जाति के हैं। वाह! जिस ज्ञान को सिद्ध की उपमा लागू हुई, उस ज्ञान में कषाय की मलिनता कहाँ रहेगी? वीतरागी शांतरस के स्वादवाला वह ज्ञान है।

सम्पादकीय

❀ भगवान महावीर-निवाण के २५०० वें वर्ष का मंगल-महोत्सव ❀

कुछ ही दिनों में दीपावली आयेगी और भगवान महावीर के मोक्षगमन को ढाई हजार वर्ष पूरे होंगे... अहा, मोक्षपद तो जगत का सर्वोत्कृष्ट मंगल-महोत्सव है, और उसमें भी २५००वें वर्ष की पूर्णता का भव्य उत्सव अपने जीवन-काल में ही मनाने का सौभाग्य हम सबको मिल रहा है।—इस अवसर पर हमारा कर्तव्य है कि—अंतर में स्वयं अपने आत्मा को मोक्षसन्मुख करके और बाह्य में तन-मन-धन से इस महान मोक्ष-उत्सव को सुशोभित करें... तथा वीरनाथ के शासन की अधिक से अधिक प्रभावना करें। इस संबंध में देशभर का जैन समाज एकमत है।

अब, एकमत से हमने जो निर्णय किया है, उसकी सिद्धि के लिये क्या करें? तत्संबंधी कुछ विचार यहाँ व्यक्त करता हूँ—

सर्वप्रथम तो अपने सर्वज्ञ-वीतराग महावीर भगवान का स्वरूप पहिचानकर, उनके द्वारा कहे हुए मोक्षमार्ग का (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का) सत्यस्वरूप जानकर, उस मार्ग की साधना में तत्पर हों, और उसका प्रचार करें। महावीर भगवान के सर्वोत्कृष्ट वीतरागमार्ग की जगत के किसी दूसरे मार्ग के साथ तुलना न करें, दूसरे मार्ग की ओर न जायें और महावीर प्रभु के ही मार्ग चलें।—यह मूलभूत भावना प्रत्येक जैन में होगी, तभी हम महावीर भगवान के मोक्ष के भव्य उत्सव की रूपरेखा तैयार कर सकेंगे।

सामाजिक दृष्टि से, अर्थात् महावीर भगवान के भक्तों के रूप में समस्त जैन समाज को परस्पर बैर-विरोध मिटाकर एक होकर रहना है।—किसप्रकार? मानों महावीर भगवान आज हम सबके सन्मुख ही विराज रहे हों, और हम सब प्रभु के धर्मदरबार में बैठे हों... जिसप्रकार भगवान की धर्मसभा में परस्पर (शेर और हिरन, सर्प और नेवला आदि जाति विरोधियों में भी) बैर-विरोध की भावना नहीं रहती, मैत्रीभाव ही रहता है; उसीप्रकार हम सबमें (महावीर

के समस्त भक्तों में) कहीं परस्पर क्लेश या बैर-विरोध की वृत्ति न रहे, यदि हो तो उसे दूर करके अत्यंत मैत्रीभाव से रहें; धार्मिक स्नेह की पवित्र धारा बहती रहे; सुख-दुःख में एक-दूसरे के सहभागी हों; यह हम सबका कर्तव्य है। 'सत्त्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं...' यह कितनी सुंदर भावना अपने वीतरागशासन में विद्यमान है!

बाग-बगीचे या अस्पताल बनाने की अपेक्षा सर्वप्रथम साधर्मियों की ओर ध्यान दें। भगवान महावीर का शासन जैन साधर्मियों द्वारा सुशोभित होगा। विदेश में प्रचार की अपेक्षा स्वदेश के साधर्मियों में महावीर प्रभु के तत्त्वज्ञान का प्रचार हो, और धर्मसेवन में किसी भी साधर्मी को कष्ट न रहे—ऐसा प्रयत्न अत्यंत आवश्यक है।

दूसरा बहुत-कुछ करना है, वह फिर लिखेंगे। ●●●

❀ पूज्य बहिनश्री का जन्मोत्सव और स्वानुभूति का मंगल-महोत्सव ❀

भारत के अनेक मुमुक्षु जिनकी प्रसिद्ध महिमा को जानते हैं; और जिनकी प्रशंसा के उद्‌गार पूज्य गुरुदेव के श्रीमुख से भी झरते हैं, ऐसी स्वानुभूति संपन्न पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन की ६१वीं जन्म-जयंती का उत्सव सोनगढ़ में अत्यंत आनंद-उल्लास से मनाया गया... बाहर से अनेक मुमुक्षु सोनगढ़ आकर इस मंगल-उत्सव में सम्मिलित हुए थे, और सबने प्रसन्नता व्यक्त की थी। हम यहाँ उसके विशेष प्रयोजनभूत प्रसंगों का ही अवलोकन करेंगे।

❀ मंगल संदेश ❀

जन्मोत्सव की खुशी में जब मुमुक्षु समाज बहिनश्री के दर्शन करने गया, तब चैतन्य के प्रसादरूप मंगल-वचनों में उन्होंने कहा कि—

'आनंदमय चैतन्यतत्त्व ही जगत में परम सर्वोत्कृष्ट तत्त्व है। ऐसे आत्मा की आराधना जीवन में करने योग्य है। बाकी तो सब बाहरी ठाटबाट है। अंतर में देह से और राग से भिन्न चैतन्यतत्त्व उत्कृष्ट है, उसकी पहिचान, श्रद्धा और लीनता ही करनेयोग्य है।'

अहा, संक्षेप में भी कितनी सुंदर और महत्वपूर्ण बात उन्होंने कही। वास्तव में आत्मा की आराधना ही सच्चा कर्तव्य है-ऐसा समझकर उन्होंने आराधना का अमृत पिलाया है! वास्तव में उनके अंतर में प्रवर्तमान ऐसी आत्म-आराधना के द्वारा ही उनका जीवन महान

पवित्र, पूज्य और प्रशंसनीय है। उनकी इस आराधना को पहिचानना ही उनके प्रति सर्वोत्कृष्ट भक्ति है और यही उनका सच्चा महोत्सव है। अहा, जिस जन्म में ऐसी आराधना प्राप्त हुई, उसका जितना उत्सव मनायें उतना कम है। इसलिये पूज्य स्वामीजी भी प्रमोदपूर्वक कहते थे कि—लोगों में बड़ा उत्साह है!—परंतु आराधक धर्मात्मा की तो जितनी महिमा करें, उतनी कम है। वाह! आत्म-आराधना, वह जगत में सर्वोत्कृष्ट सुंदर वस्तु है। ऐसी आराधना द्वारा सुशोभित धर्मात्मा, दूसरे जीवों को भी आराधना की महान प्रेरणा देते हैं।—और ऐसी आराधना में अपने आत्मा को जोड़कर ही आराधक माहात्माओं की सच्ची भक्ति होती है।

ज्यों-ज्यों ज्ञान की अंतरंग गंभीर महिमा का ख्याल आता है, त्यों-त्यों मुमुक्षु के अपने परिणाम भी जो बाहर उछलते थे, वे अंतर में गंभीर होते जाते हैं, और उसके ज्ञान में धर्मात्मा के गुणों का बहुमान अधिकाधिक जागृत होता जाता है; अंत में पराकाष्ठा पर पहुँचकर स्वयं भी वैसे गुणों की अनुभूति करता है।

हजारों मुमुक्षु भाई-बहिनों द्वारा पूज्य बहिनश्री को अभिनंदन देने की विधि पूज्य शांताबहिन के अभिनंदन द्वारा प्रारंभ हुई। ४० वर्षों से पूज्य बहिनश्री की अति निकट अंत:वासी पूज्य शांताबहिन ने अपने प्रवचन में पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन के प्रति उपकारबुद्धि से कहा कि—पूज्य बहिनश्री का मुझ पर महान उपकार है; उनके प्रताप से ही मुझे आत्मा का महान लाभ हुआ है। शांताबहिन ने पूज्य बहिनश्री को श्रीफल अर्पण करके उनका अभिनंदन किया, वह दृश्य मुमुक्षुओं को भावविभोर करता था।

❀ भूत-भविष्य का एक मधुर संस्मरण ❀

इस उत्सव का विशेष आकर्षण एक चाँदी का 'प्रतीक' था। जातिस्मरण के सुमधुर प्रसंग को लक्ष में रखकर यह प्रतिकृति बनायी गई है। उसमें भूतकालीन तीर्थंकर प्रभु की सभा का दृश्य तथा भविष्यकालीन तीर्थंकर सभा का दृश्य बतलाया गया है; और पूज्य बहिनश्री का आत्मा उन दोनों पर्यायों में तीर्थंकर का उपदेश झेल रहा है; तथा बीचों बीच उनकी वर्तमान दशा की शांतमुद्रा का दर्शन होता है।—इस चाँदी के प्रतीक में जाति-स्मृति का आंशिक उल्लेख है; उसकी सच्ची और पूरी बात समझने के लिये हम २६ वर्ष पहले का एक पावन प्रसंग याद करेंगे। अब से २६ वर्ष पूर्व अर्थात् संवत् २००४ के पौष महीने में (गुरुदेव ने अपने

में एक स्वप्न के अनुसंधान पूछने पर) पूज्य बहिनश्री ने अपने को इस वर्ष पूर्व जातिस्मरण में आयी एक यथार्थ बात प्रगट की कि—जब श्री कानजीस्वामी का जीव भविष्य में तीर्थंकर होगा, तब चंपाबहिन और शांताबहिन के जीव उन तीर्थंकर के गणधर होंगे।

— अहा, गुरुदेव ने जब पूज्य बहिनश्री के श्रीमुख से यह महान मंगल-कथा सुनी तब, उन्हें जो अद्भुत प्रमोद आया, वह हमने प्रत्यक्ष देखा है, और उसका स्मरण आज भी रोमांचित कर देता है। हजारों मुमुक्षुओं ने गुरुदेव के श्रीमुख से यह भूत-भविष्य की पावन कथा सुनी है, तथा वर्तमान में प्रत्यक्ष देखकर धन्य हुए हैं। गुरुदेव के महान प्रमोद के कारण उस मंगल जातिस्मृति के अनुसंधान में उस वर्ष (अर्थात् आज से २६ वर्ष पूर्व) सोनगढ़ में गुरुदेव की ५९वीं जन्म-जयंती के अवसर पर अति भव्य उल्लासपूर्ण उत्सव मनाया गया था।—कौन भूल सकता है, उस मधुर संस्मरण को! उसे सोने-चाँदी में उत्कीर्ण करने की भावना मुमुक्षुओं को हो-यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

— ऐसे विविध उत्सवों द्वारा जिनकी भक्ति-बहुमान किये जाते हैं, वे स्वयं कहती हैं कि यह सब बाहरी ठाटबाट तो उपाधि है।—वाह! चैतन्यतत्त्व को चेतनेवाली चेतना, वह तो कैसी अलिप्त है! ऐसी ज्ञानचेतनारूप परिणमित हुए संतों की तुलना या पहिचान चाहे जितने बाहरी ठाटबाट से नहीं हो सकती। अरे, तीनलोक का वैभव भी जिसके निकट तुच्छ है, ऐसी महान आत्म-अनुभूति की गंभीरता को पहिचानने पर वैसा भाव अपने में प्रगट हो—वही धर्मात्मा की सच्ची उपासना है, वही सर्वोत्कृष्ट महोत्सव है।—ऐसे मंगल उत्सव द्वारा समस्त साधर्मी अपना कल्याण करो।

हे माता! दुनिया के चाहे जितने ऊँचे रत्नसिंहासन पर आपको विराजमान किया जाए, परंतु स्वानुभूति द्वारा जिस अंतरंग निजपद के सिंहासन पर आप विराजमान हैं, उसकी तुलना अन्य कोई सिंहासन नहीं कर सकता। आपके चैतन्यपद के निकट इंद्र का इंद्रासन भी अपद प्रतीत होता है। भक्तों ने आपका चुटकी भर हीरों से स्वागत किया—अरे! तीन लोक के हीरे-पन्ने-माणिक एकत्रित करके भी यदि आपका सम्मान करें तो भी जो चैतन्य-हीरा आपके अंतर में जगमगा रहा है, उसकी तुलना नहीं हो सकती। हजारों विद्युत-दीपकों की चमक भी आपकी स्वानुभूति के अतीन्द्रिय प्रकाश के एक छोटे से अंश को नहीं पा सकती। आपके

स्वानुभवरस के अति मधुर स्वाद के सामने जगत का मिष्टान्न सर्वथा नीरस लगता है। बस, इसप्रकार आपके अंतर की आत्मिक पहिचान द्वारा जीव को स्वयं जब स्वानुभूति का प्रकाश जागृत हो, तब वह निज चैतन्यपद में आरूढ होगा; और जब वह सम्यक्त्वादि चैतन्यरत्नों से अलंकृत होगा, तभी आप जैसे धर्मात्मा की सच्ची महिमा को वह पहिचान सकता है... और पहिचानपूर्वक जो महिमा आती है, वह अद्‌भुत होती है। स्वानुभूति अनुपम है, स्वानुभूति से बाह्य अन्य किसी भी पदार्थ द्वारा उसका मूल्यांकन या उसकी महिमा नहीं हो सकती। मात्र ऐसी स्वानुभूति द्वारा ही हे माता! आप महान हो! और आपका पवित्र जीवन मुमुक्षुओं को भी उस स्वानुभूति की प्रेरणा दे रहा है। हे साधर्मीजनों! धर्मात्माओं की स्वानुभूति को पहिचानो और तुम भी ऐसी स्वानुभूति प्रगट करो... यही सर्वोत्कृष्ट भक्ति है, यही सच्ची धर्मप्रभावना है, और यही माताजी की आज्ञा है।

इस उत्सव के समय धर्मात्मा-संतों की चेतनापरिणति की अचिंत्य महिमा पूज्य स्वामीजी के मुख से सुनकर ऐसा लगता था कि—वाह! चंपाबहिन तो सचमुच चेतना-बहिन हैं! अहा, जिनकी चेतना और जिनकी जीवन स्वानुभूति में परम निमित्त हुए हैं, उनके उपकार की क्या बात! जो असंख्यप्रदेशों में—अनुभूति में व्याप्त हो गया हो, उस उपकार का मात्र शाब्दिक अंजलि द्वारा वर्णन नहीं हो सकता। शब्दातीत उनकी स्वानुभूति जयवंत हो... वह अभिनंदननीय है, उसे मेरा निरंतर भावनमस्कार है! (— ब्रह्मचारी हरिलाल जैन)

❀ विविध समाचार ❀

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)—पूज्य गुरुदेव सुख-शांति में विराजमान हैं। प्रातःकाल श्री 'प्रवचनसार' पर और दोपहर को श्री 'समयसार कलश टीका' पर प्रवचन होते हैं। अन्य कार्यक्रम भी नियमितरूप से चल रहे हैं।

तारीख २७-८-७४ से २० दिन का जैनधर्म शिक्षण शिविर प्रारंभ हुआ है और बहार से करीब दो-ढाई सो मुमुक्षु शिविर में भाग लेने हेतु आये हैं। सोनगढ़ का वातावरण आध्यात्मिकता से गूँज रहा है। परभावों की घोर अशांति से छूटकर चैतन्य की अपूर्व शांति प्राप्त

करने का यह अवसर है... और शांतरस के पिण्डरूप हुए पूज्य स्वामीजी हमें सद्भाग्य से मिले हैं जो निरंतर शांति का मार्ग बतला रहे हैं... तो अब कौन मुमुक्षु जीव वह आत्मशांति लेने में विलंब करेगा ?

❀ पिछले महीने अनेक जिज्ञासुओं की ओर से पत्र आये हैं। सबने अपनी सलाह-सूचना के साथ आत्मधर्म और संपादक के प्रति जो हार्दिकभाव बतलाया है, उसके लिये सबके आभारी हैं। मुख्यतः दिल्ली से भगतरामजी जैन (मंत्री), बनारस से पंडित फूलचन्दजी सिद्धांतशास्त्री, तथा कलकत्ता, छिंदवाड़ा, खंडवा, बम्बई, मद्रास, राजकोट आदि अनेक स्थानों से साधर्मियों के पत्र आये हैं; उन सबकी सूचनाएँ संपादक ने लक्ष में ली हैं; सहयोग के लिए धन्यवाद!

❀ प्रिय बाल सदस्यों! महावीर भगवान के २५००वें निर्वाण-महोत्सव का महान वर्ष दौड़ता निकट आ रहा है। तुम इस वर्ष में क्या करोगे ? अपनी आत्मशक्ति को काम में लगाकर आत्महित के कार्य करना... जिससे जीवन बदल जाये और महावीर के शासन में आकर तुम्हारा आत्मा सुशोभित हो उठे...! यह तो हुई अंतर की बात!

और बाह्य में भी ऐसे सुंदर महावीर मार्ग को सुशोभित करने के लिये तन-मन-धन से भाग लेना। हम तुम्हें कुछ मार्गदर्शन करायेंगे; उसका रुचिपूर्वक अनुसरण करना और सब योजनाओं में नियमित भाग लेना। फिलहाल तो ढाई हजारवें निर्वाण-महोत्सव में खर्च करने के लिये तुम दिवाली तक अपने खर्च में कटौती करके 'ढाई हजार पैसे' (पच्चीस रुपये) बचाकर रखना। फिर उनका क्या करना-वह निर्णय होने पर बतलायेंगे।

— जय महावीर

❀ मेरी सर्वप्रिय पत्रिका—'आत्मधर्म' ❀

छिंदवाड़ा से एक धर्म-बहिन लिखती हैं—''माह अषाढ़ के आत्मधर्म में ज्ञानगोष्ठी' नामक नवीन विषय अत्यंत सुंदर लगा। 'आत्मधर्म' मेरी सर्वप्रिय पत्रिका है। और स्वामीजी के सुंदर प्रवचन तथा अमूल्य चर्चा से परिपूर्ण होने के कारण इसके प्रति बहुमान आता है।''

विशेष में आप लिखती हैं कि ''अगर आप आत्मधर्म की कीमत कुछ और अधिक भी

कर देवेंगे तो भी अध्यात्मप्रेमी सभी जीव, आर्थिक परिस्थिति ठीक न होने पर भी, अपने अन्य दूसरे खर्चे में कुछ कमी करके इस पत्रिका को तो अवश्य खरीदेंगे। कोई भी धर्मप्रेमी जीव इतनी सुंदर पत्रिका को प्राप्त करने से वंचित न होना चाहेगा।'' [बहिनजी, आत्मधर्म के प्रति आपकी उत्तम भावनाओं के लिए धन्यवाद! हमें खुशी है कि आप जैसे हजारों साधर्मी भाई-बहिन आनंद से आत्मधर्म पढ़ते हैं। हमारी तो भावना है कि आत्मधर्म के पाठकवर्ग के सहयोग से, बिना कीमत बढ़ाये ही आत्मधर्म की पृष्ठ संख्या बढ़ायी जाए। समर्थ पाठकगण आत्मधर्म का एक-एक फार्म का खर्च देकर अपनी ओर से अधिक पृष्ठ प्रकाशित करायें। प्रति फार्म ४००) रुपये के खर्च में एक फार्म की २५०० प्रतियाँ अर्थात् कुल मिलकर बीस हजार पृष्ठ का उच्च अध्यात्मसाहित्य प्रकाशित हो सकता है। इस बारे में माननीय प्रमुख श्री द्वारा एक योजना हम आगामी अंक में प्रकाशित करना चाहते हैं। — संपादक

(भगवान महावीर २५०० वें निर्वाणोत्सव के अंतर्गत)

सनावद में विशाल स्वाध्यायभवन का निर्माण

अषाढ़ शुक्ला ८ को प्रातःकाल विशाल जुलूस निकाला गया। फिर ८ से १० बजे तक अष्टाह्निका पर्व की सामूहिक पूजा हुई। सुबह १० बजे से ११ बजे तक स्वाध्यायभवन की शिलान्यास विधि पंडित मूलचंदजी शास्त्री द्वारा करायी गयी। शिलान्यास विधि में मुमुक्षु भाई-बहिनों एवं समस्त समाज ने उत्साहपूर्वक भाग लिया था। शिलान्यास विधि के समय ४२ हजार के करीब धनराशि एकत्र हुई। स्वाध्यायभवन तीन-चार महीने में बनकर तैयार हो जायेगा। इस स्वाध्यायभवन के निर्माण में श्री सोनचरणजी जैन एवं श्री कँवरचंदजी जैन का विशेष योगदान है।

पंडित चिमनभाई सोनगढ़ के द्वारा एक महीने तक विशेष धार्मिक प्रभावना हुई।

—सतीशचंदजी जैन

दिल्ली की सूचना

भगवान महावीर २५००वाँ निर्वाणोत्सव महासमिति दिल्ली की ओर से 'वीर परिनिर्वाण' नाम से मासिक पत्रिका का प्रकाशन होता है। वार्षिक शुल्क १०) रुपये है।

निर्वाणोत्सव के बारे में विविध जानकारी के लिये आप यह पत्रिका निम्न पते से मंगा सकते हैं।

भगवान महावीर २५००वाँ निर्वाणमहोत्सव समिति,
२१०, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-११०००१

अब तैयार हो जाइये!

१९७४ को दीपावली से प्रारंभ करके १९७५ की दीपावली तक का पूरा वर्ष हम सब 'भगवान महावीर का २५००वाँ निर्वाणमहोत्सव' बड़े उत्साह के साथ मना रहे हैं। इस महान उत्सव में तन-मन-धन से साथ देने के लिये एवं वीरनाथ के मार्ग में आत्महित का लाभ लेने के लिये आप पूरी ताकत के साथ तैयार हो जाइये। — जय महावीर

'आत्मधर्म' के ग्राहकों को सूचना

'आत्मधर्म' का यह अंक श्रावण तथा प्रथम भाद्रपद का संयुक्त अंश है। अब से आत्मधर्म प्रत्येक मास की ५वीं तारीख को पोस्ट होगा। — व्यवस्थापक

युग-युग जीयो धर्मरत्न!

मंगलकारी 'तेज' दुलारी पावन मंगल मंगल है,
मंगल तव चरणों से मंडित अवनी आज सुमंगल है;
श्रावण दूज सुमंगल उत्तम, वीरपुरी अति मंगल है,
मंगल जन्ममहोत्सव का यह अवसर अनुपम मंगल है।

सागर सम गंभीर मति-श्रुत ज्ञान सुनिर्मल मंगल है,
समवसरण में कुन्दप्रभु का दर्शन मनहर मंगल है;
सीमंधर-गणधर-जिनधुनि का स्मरण मधुरतम मंगल है... मंगलकारी०

शशि-शीतल मुद्रा अति मंगल, निर्मल नैन सुमंगल है,
आसन-गमनादिक कुछ भी हो, शांत सुधीर सुमंगल है।
प्रवचन मंगल, भक्ति सुमंगल, ध्यानदशा अति मंगल है... मंगलकारी०

बहिन की (चंपाबहिन की) बात ही अलग है;... बहिन का आत्मा तो मंगलमय आत्मा है... सारे भारतवर्ष में उसका नमूना नहीं मिल सकता;.... बहिन तो समस्त मंडल का (मुमुक्षु समाज का) हीरा हैं, रतन हैं, धर्मरतन हैं... स्त्रियों का भाग्य है कि बहिन जैसी इस काल में पैदा हुई हैं... भारत में बहिन के समान स्त्रियों में कोई नहीं है, अजोड़ रत्न हैं।

—पूज्य गुरुदेव।

भले ही मैं अकेला हूँ.... किंतु पूर्ण हूँ

हे माता! मैंने शुद्ध चैतन्यस्वरूप की अनुभूति की है, उस स्वरूप की विशेष साधना के लिये मैं अपने चैतन्यधाम में रहना चाहता हूँ, उसके लिये हे माता! मैं अब इस मोह को छोड़कर शुद्धोपयोगी चारित्रदशा ग्रहण करने जाता हूँ... हे माता! तुम मुझे आनंदपूर्वक अनुमति दो। —ज्ञानी पुत्र अपनी माता के पास इसप्रकार वैराग्यपूर्वक आज्ञा माँगता हो–वह प्रसंग कैसा होगा!

वैराग्य से मुनिदशा अंगीकार करके वन में जाने के लिये तत्पर धर्मात्मा पुत्र से माता कहती है—बेटा, यह घर, कुटुंब, वैभव सबका त्याग करके तू वन में एकाकी किसप्रकार रहेगा?

वैरागी पुत्र कहता है कि—हे माता! भले ही मैं अकेला हूँ, किंतु पूर्ण हूँ। एक होने पर भी मैं अनंत निजगुणों से परिपूर्ण हूँ; वन में एकाकी रहकर अपने अनंत निजगुणरूपी परिवार के साथ केलि करूँगा। सर्वथा अकेला नहीं हूँ, अपने अनंत गुणों का परिवार मेरे साथ ही है... अकेला, तथापि ज्ञानानंद से पूर्ण हूँ।

(मैं 'एक' शुद्ध ममत्वहीन... मैं ज्ञानदर्शन 'पूर्ण' हूँ)

हे माता! इन संयोगों के बीच रहता था, तब भी मैं अकेला था... तब भी मैं अकेला ही अपने सुख–दु:ख का वेदन करता था; और अब मुनि होकर वन में अपने आत्मा के निर्विकल्प महा आनंद का मैं एकाकी रहकर उपभोग करूँगा... और मोक्ष में भी अकेला जाऊँगा। संसार या मोक्ष में जीव अकेला ही है, दूसरा कोई उसका साथी नहीं है।

पुत्र की ऐसी वैराग्यपूर्ण बात सुनकर माता ने प्रसन्नता से कहा—धन्य है बेटा! आत्मा का एकत्वस्वरूप बतलाकर तूने मेरी आँखें खोल दीं; मेरे मोह का पर्दा हटा दिया। बेटा, तू खुशी से अपने एकत्वस्वरूप की साधना कर! मैं भी इसी मंगल मार्ग पर आऊँगी।

जीव अकेला ही मरे स्वयं, जीव अकेला जन्मे अरे!
जीव एक का ही हो मरण, जीव अकेला सिद्धि लहे।
मेरा सुशाश्वत एह दर्शन–ज्ञानलक्षण जीव है;
शेष सब संयोगलक्षण भाव मुझसे बाह्य हैं।

(श्री नियमसार, गाथा १०१–१०२)

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)
मुद्रक : मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)